सबला

वर्ष 6 : अंक 3 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली अगस्त-सितंबर, 1993

सहयोग मंडल

कमला भसीन

मणिमाला

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

संपादिका

शारदा जैन

उप-संपादिका

सुहास कुमार

वीणा शिवपुरी

चित्रांकन

बिंदिया थापर

वितरण

प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत; डाक्टर शारदा जैन (सेवा ग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रैस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

इस अंक में

हमारी बात 1

औरत और धर्म: एक विश्लेषण 3
—श्रीलता स्वामीनाथन

वोट हमारा हक भी है और फर्ज भी 7
—कमला भसीन

पंचायत विधेयक क्या है? 9
—रेणुका मिश्रा

क्या यह बंटवारा सही है? 12
—सुहास कुमार

अच्छी औरत: बुरी औरत 13
—वीणा शिवपुरी

ज़ंजीरों को तोड़ कर 15
—जुही जैन

शासक कौन? 18
—सुहास कुमार

लड़कियों की पंचायत 21
—वीणा शिवपुरी

औरत औरत का सहारा बने 23
—सुहास कुमार

सोनपुर की सबलाएं 26

अख्तर के अब्बा कौन 27
—अनीता रामपाल

मिल के चलें, मुश्किलें होंगी आसान 30

उत्पीड़ित महिलाओं को शीघ्र न्याय मिले 31
—उषा श्रीवास्तव

हम सब नेता बन सकती हैं 33
—वीणा शिवपुरी

गुणी की कहानी, लक्ष्मीबाई की जुबानी 34
—जुही जैन

हमारी बात

पुरुष-प्रधान समाज में किसी रिश्तेदार, मित्र या बिल्कुल अजनबी पुरुष द्वारा स्त्री पर दुर्व्यवहार, अत्याचार या बलात्कार के हादसों की चर्चा हर काल में होती रही है। उनकी कड़े से कड़े शब्दों में भर्त्सना भी की जाती रही है। लेकिन स्त्री ही द्वारा स्त्री पर अत्याचार की अनकही कहानी के चर्चे भी अब कम नहीं। सास या ननद द्वारा बहू को तंग करने, यहां तक कि उसे जला कर मार डालने की वारदातें रोज़मर्रा की कहानी बन गई हैं। दूसरी ओर बहू द्वारा सास की उपेक्षा और उसके साथ दुर्व्यवहार की घटनाएं भी आम हैं।

बलात्कार के मामलों या भटक गई स्त्री को वैश्यालय तक पहुंचाने में भी रिश्तेदार स्त्री या पेशेवर औरत का हाथ रहता है। पहाड़ों या गरीब समाजों से भगा कर लाई लड़कियां बड़े शहरों के चकलों में भर्ती की जाती रही हैं। उनमें भी 'कुटनी' का ही हाथ होता है जो पहले उसे प्यार और हमदर्दी का मरहम लगा कर अपने जाल में फंसाती है, फिर नर्क में ढकेल देती है।

औरतें एक दूसरे के साथ ज्यादती करती हैं इसे नकारा नहीं जा सकता। लेकिन ऐसा क्यों होता है? क्या इसे रोका नहीं जा सकता? यह सवाल हम औरतों के लिए चुनौती है।

जो बहू जवानी में दुर्व्यवहार सहती है सास बन कर कठोरता क्यों बरतती है? क्या उसे वे दिन याद नहीं रहते जब वह बहू बन कर आई थी और सास-ननद का प्यार पाने को भूखी रहती थी? सास बन कर वह अपनी बहू से प्यार क्यों नहीं करती? इसका एक जवाब यह हो सकता है कि समय आने पर वह भी अपनी सत्ता जमा कर अपने प्रति दुर्व्यवहार का बदला लेना चाहती है। पर वह किससे बदला ले रही है? सास से जिसने उसे सताया था जो अब तक भगवान को प्यारी हो चुकी होती है, या बहू से जो बिल्कुल निर्दोष है।

इसे यूं समझें। क्या कोई पिता जिसका बचपन बड़े कष्ट में बीता अपने बच्चों को सुखी जीवन नहीं जीने देता? नहीं। शायद ही कोई पिता ऐसा हो जो यह सोचेगा कि उसका बचपन दुख में बीता इसलिए उसके बच्चे भी सुख से न रहें। तब सास क्यों बहू को दुख देती है? उसे अपने गले से क्यों नहीं लगाती? उससे अपना दुख क्यों नहीं बांटती और उसके साथ ऐसा व्यवहार कर जो स्वयं उसे नहीं मिला क्यों अपनी जीत नहीं मानती? वह बूढ़ी सास को चाहे माफ न कर सके, पर बहू को तो न सताए? यह कैसे न्यायोचित या तर्क-संगत है कि चूंकि सास को अपनी सास से दुर्व्यवहार मिला, इसलिए वह अपनी बहू से बुरा व्यवहार करेगी। इस तरह की सोच से समाज में विकृति बढ़ेगी, मिटेगी नहीं।

बहुत हद तक सास-बहू या ननद -भाभी के झगड़ों की जड़ हमारे दुर्भाग्यपूर्ण रीति-रिवाज हैं। बचपन से लड़की के दिल में ससुराल वालों के प्रति डर बैठा दिया जाता है जो बाद में नफरत में बदल जाता है। बहू सास-ननद को 'हौवा' मान कर ससुराल की दहलीज में पांव रखती है। इसके दो नतीजे होते हैं। या तो बहू दब-घुट कर जिंदगी बिताती है या शुरू से दुश्मन की भूमिका निभाने लगती है। दोनों ही सूरतों में रिश्ता सहज नहीं हो पाता और न परिवार में मधुरता आती है।

सास-ननद के हाथों दुर्व्यवहार सहकर जब वह सास बनती है तब वह अपनी सत्ता जमा कर संभवतः अपने पर हुए दुर्व्यवहार का प्रतिकार करना चाहती है। इसी भावना को हमें खत्म करना है, वरना पारिवारिक आक्रोश पीढ़ी-दर-पीढ़ी पलता जाएगा।

यदि औरतें एक-दूसरे को सहारा दें तो पुरुष-वर्ग उनका शोषण नहीं कर पाएगा।

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

औरत और धर्म एक विश्लेषण

श्री लता स्वामीनाथन

आटा गूंधने के लिए कोई औरत पूजा-पाठ नहीं करती। न कपड़े धोने, आंगन लीपने, अचार बनाने, गोबर बीनने या चूल्हा जलाने के पहले पूजा करती है। चाहे वह कितनी भी पिछड़ी या अनपढ़ हो, या धार्मिक विचारों की हो। क्यों नहीं करती? क्योंकि यह सारे काम औरत के बस के हैं। यह काम वह रोज़ करती है इसलिए इन्हें करने में उसे कोई डर, शक या बहम नहीं होता। इन्हें करना वह अच्छी तरह जानती है। अगर गलती भी करती है तो वह जानती है कि इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। न प्रार्थना करने, न मंदिर जाने की जरूरत है।

औरत ऐसे बहुत से काम करती है जिन पर उसका पूरा नियंत्रण है और जिनके बारे में वह खुद फैसला करती है। वह समझती है कि अगर रोटी जल गई है तो या तो आंच ज्यादा तेज़ है या रोटी तवे पर ज्यादा देर रह गई। यह वह हर्गिज़ नहीं समझती कि भगवान ने उसकी रोटी जला दी या उसकी किस्मत ही फूटी है। न ही यह सोचती है कि इसके लिए सोमवार का व्रत रखना होगा या मंदिर में प्रसाद चढ़ाना होगा।

पर शादी के लिए, अच्छे पति के लिए, बच्चों के लिए, अच्छे सास-ससुर के लिए, पति की लंबी उम्र के लिए औरत हर क्षण प्रार्थना, पूजा, उपवास, व्रत, मंदिर-दर्शन आदि करती रहती है।

इस बारे में दो राय नहीं हो सकतीं कि जिनके बारे में इंसान को पूरा ज्ञान है और जिन परिस्थितियों पर उसका नियंत्रण है वहां वह डरता नहीं है। वहां धर्म की ज़रूरत नहीं पड़ती है। जहां भविष्य

अनिश्चित है वहां सदा डर बना रहता है। ऐसे समाजों में जहां वैज्ञानिक समझ है और जीने की बुनियादी ज़रूरतें सहज ही मिली हुई हैं जैसे रोटी, कपड़ा, मकान, रोज़गार, स्वास्थ्य सेवाएं आदि वहां धार्मिक प्रवृति कम होती जाती है। जहां इन पर इंसानी नियंत्रण बहुत कम होता है, वैज्ञानिक समझ की कमी है, वहां भविष्य असुरक्षित रहता है और वहां धर्म का नागपाश इंसान को जकड़े रहता है।

अज्ञानता का अंधेरा

धर्म अज्ञानता के अंधेरे में पलता है। ज्ञान की रोशनी में कमज़ोर पड़ जाता है। धर्म को मज़बूत बनाने के लिए भय, शक और अज्ञानता की उपजाऊ धरती चाहिए। हमारे गरीब व सामंती समाज में धर्म की सबसे उपजाऊ भूमि हमारे स्त्री समाज में मिलती है। उन्हें ऐसी मानसिक व शारीरिक गुलामी में रखा जाता है जहां उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। उनको अपनी ज़िंदगी पर कोई हक़ या नियंत्रण नहीं मिलता। जन्म से मरने तक वह पुरुष पर निर्भर है। बचपन से ही उसे इतना दबाया या कुचला जाता है कि वह अपने हक़ों के बारे न तो सोच पाए, न ही कोई आवाज़ उठा पाए।

बचपन से औरत को ऐसे ढाला जाता है कि उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसकी ज़िंदगी का मक़सद है पत्नी और फिर मां बनना। मनुस्मृति के हिसाब से औरत के लिए मोक्ष पाने का एक ही रास्ता है, वह है पति की सेवा करना। वैसे मनुस्मृति में यह भी लिखा है कि हरिजनों के लिए मोक्ष का रास्ता है सवर्णों की सेवा करना। मनु कोई भगवान नहीं थे, न ही मनुस्मृति कोई देववाणी।

धर्म के ज़रिए से पुरुष ने स्त्री को हर सामाजिक दंड दिया। पति पहले मर जाए तो उसकी ज़िम्मेवार पत्नी है। वह कुलक्षिणी है। विधवा की शक्ल तक देखना अपशगुनी है। विधुर की शक्ल देखने में अपशगुनी नहीं है। बच्चे न पैदा हों तो औरत का क़सूर, बच्चियां ही पैदा हों तो औरत का क़सूर। विज्ञान के अनुसार दोष दोनों का ही हो सकता है। बच्चियों का पैदा होना तो पुरुष के बीज से तय होता है। पुरुष शराबी, जुआरी, बेकार या बीमार है तो भी औरत का दोष।

औरत का बलात्कार होता है तो कलंकिनी उसे ही ठहराया जाता है। इंद्र गौतम ऋषि की पत्नी के साथ संभोग करते हैं तो सज़ा की भागी गौतम की पत्नी होती है। उसे गौतम श्राप देकर पत्थर बना देते हैं। क्या खूब है पुरुषों का न्याय। यही 'न्याय' व दोहरी नीतियां आज धर्म के नाम पर हमारे समाज में प्रचलित हैं।

बचपन से गलत सीख

राजस्थान में औरतों को, खासकर राजपूत औरतों को, बचपन से ही सती की महिमा व पूजा सिखाई जाती है। उनके लिए किसी और तरह की सोच असंभव है। पति संबंधी तरह-तरह के व्रत उपवास रखना सिखाया जाता है। यदि पति में कोई दोष है या वह मर जाता है तो औरत को दोष दिया जाता है कि व्रत-उपवास ठीक से नहीं रखा होगा। पुरुष के दिमाग़ में यह बात नहीं बैठाई जाती कि पत्नी के स्वास्थ्य या लंबी उम्र के लिए प्रार्थना करो, व्रत, उपवास, पूजा करो।

औरत यह सब ढोंग करती क्यों है? इसलिए कि उसका अपने मन, शरीर व पूरे जीवन पर कोई अधिकार नहीं है। कैसे स्कूल में पढ़ेगी, कहां तक पढ़ेगी, कब शादी करेगी, कब और कितने बच्चे

पैदा करेगी, बच्चों का पालन पोषण कैसे होगा इनमें से किसी पर भी फैसला उसके हाथ में नहीं होता। उसे इन पर अपने मन की बात खुल कर कहने तक का हक़ नहीं होता।

नतीजा होता है औरत की पूरी जिंदगी डर, भय व अनिश्चितता से घिरी रहती है। दुख और डर से भागने का एक ही तरीका उसके सामने रहता है। वह है पूजा-पाठ, प्रार्थना।

औरत की अपनी पहचान को पूरी तरह दबा दिया गया है। सिर्फ फलां की मां, फलां की पत्नी, फलां की सास ही होती है। सामाजिक स्तर पर हर हक़ से वंचित है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक नीतियों या फैसलों से दूर, उत्पादक होते हुए भी उत्पादन के साधनों पर कोई स्वामित्व नहीं मिलता। उसकी वैयक्तिक और सामाजिक गुलामी को वैधानिक स्वीकृति धर्म से मिली हुई है।

यह सिर्फ हिंदू धर्म की बीमारी नहीं है। हर धर्म—ईसाई, इस्लाम में भी ऐसा ही होता है। जन जातियों में भी जहां संगठित धर्म नहीं होता यह सब लक्षण देखे जा सकते हैं।

औरतों में क्षमता कम नहीं

औरतों में वे सब गुण और क्षमताएं हैं जो मर्दों में हैं। जहां बराबरी के मौके व फैलने की जगह मिलती है औरतें उन सब क्षेत्रों में सफलता हासिल करती हैं जो काफ़ी समय तक मर्दों के क्षेत्र ही जाने जाते थे। जैसे डाक्टर, वकील, वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी, राजनीतिज्ञ, इंजीनियर, कलाकार, पाइलट, बिज़नेस डाईरेक्टर, यहां तक कि पर्वतारोही भी।

असुरक्षा की भावना व संकुचित विकास के कारण औरतें एक दूसरे की मदद के बजाए एक दूसरे की आलोचना, चरित्र-हनन और अपमान करने को तैयार रहती हैं। औरतें वही धार्मिक मापदंड इस्तेमाल करती हैं जो मर्दों ने उन्हें सिखाया है। 1987 में राजस्थान में जब रूपकुंवर की हत्या सती के नाम पर हुई तो राजपूत औरतों ने भी पुरुषों के साथ उसके समर्थन में जलूस निकाला। इसके लिए बहुत सी पर्दे में रहने वाली राजपूत औरतें सड़कों पर निकल आईं।

धार्मिक गुलामी, आर्थिक गुलामी

औरतों की आर्थिक गुलामी का खात्मा सबसे खास कदम है। इसी से सामाजिक और राजनीतिक चेतना आएगी। जब तक जागरूकता नहीं आएगी धार्मिक गुलामी कायम रहेगी। देखा गया है कि किसी भी सामाजिक बदलाव में सांस्कृतिक और मानसिक बदलाव सबसे बाद में आता है। ज़िंदगी के मुख्य फैसले अपने हाथ में न होने की वजह से औरतें पूजा-पाठ का सहारा लेती हैं। पुत्र-रत्न की प्राप्ति के लिए पढ़ेलिखे स्त्री-पुरुष भी क्या-क्या धार्मिक अनुष्ठान नहीं करते? विज्ञान की खोजों के बावजूद अभी भी हम बहुत सी चीज़ों के बारे में अज्ञानी हैं।

एकजुट होकर लड़ना होगा

धर्म का विरोध या धर्म के खिलाफ़ बोलने से कोई फायदा नहीं होगा। हमें समझना होगा कि औरतें क्यों ढोंग और रूढ़ियों में फंसी हैं। यह लक्षण है, रोग नहीं, हमें रोग को मिटाने की कोशिश करनी है। आर्थिक-सामाजिक गुलामी, अज्ञानता, अपनी ज़िंदगी व भविष्य पर नियंत्रण न होना, अपने चरित्र व स्वभाव के विकास के उचित मौके न मिलना, इन सब सामाजिक बीमारियों से लड़ना होगा। □

चाहो अगर तुम
पूरे अधिकार,

तो लड़ना सीखो!
न मानो हार!!

वोट हमारा हक़ भी है और फ़र्ज़ भी

कमला भसीन

हमारा देश एक प्रजातन्त्र है, यानि प्रजा या भारत के सब प्रौढ़ निवासी अपनी सरकार चुनते हैं। हमारे गांव, राज्य या देश के बारे में कौन निर्णय लेगा, कौन हमारा प्रतिनिधि बन कर सत्ता में आएगा, यह हम सब तय करते हैं। अगर अच्छे, ईमानदार, समझदार लोग नेता बनते हैं तो हम सब की बदौलत बनते हैं। अगर बेईमान, कम समझ, स्वार्थी, सत्ता के भूखे लोग गद्दियों पर बैठते हैं तो वह भी हमारी बदौलत।

आजकल फिर से चुनावों की तैय्यारियां हैं। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश विधान सभाओं के चुनाव कुछ महीनों में होने वाले हैं।

हाल ही में बने क़ानून की भी इन दिनों बहुत चर्चा रही है। इसके तहत पंचायतों में औरतों के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित कर दी गई हैं। हम औरतों के लिए अब राजनीति और अपनी वोट की ताक़त को समझना ज़रूरी हो गया है। वोट देना हमारा अधिकार तो है ही, हमारा कर्तव्य भी है। ये अधिकार और आरक्षण हमें दान नहीं मिला। इन्हें हासिल करने के लिए औरतों ने लम्बे अर्से से लड़ाई की है, मांग की है।

यह मांग इसलिए की गई थी क्योंकि जितने राजनैतिक तन्त्र हैं (पंचायत, विधान सभा, संसद) वो हमारी ज़िंदगी से जुड़े सवालों पर निर्णय लेते हैं। उदाहरण के तौर पर ग्राम पंचायत गांव के बारे में फ़ैसले करती है। विधान सभा और संसद में हमारी शिक्षा, सेहत, धन्धा, कृषि आदि की नीतियां और योजनाएं बनती हैं। शिक्षा कैसी होगी? बाल-वाड़ियां बनेंगी या नहीं? राशन मिलेगा या नहीं और अगर मिलेगा तो किस क़ीमत पर मिलेगा? जंगल कटेंगे या बचेंगे? गांव की जमीन पर किसका हक़ होगा? औरतों को जायदाद का हक़ होगा या नहीं? मकान और खेत के पट्टे औरतों के नाम होंगे या नहीं? आई.

हमारी वोट हमारी ताक़त

ले मशालें चल पड़ीं बेदार बहने देखिये
अब अन्धेरा जीत लेंगी मिल के बहने देखिये
वोट की ताक़त समझ कर वोट देने जा रहीं
मिल के अब हम ज़िन्दगी अपनी बदलने जा रहीं
क्या हैं वादे क्या इरादे ये ज़रा समझाइये
औरतों के मसलों पर क्या सोच है बतलाइये
कौन जीते कौन हारे अपना है ये फ़ैसला
वोट की ताक़त ने ही हमको दिया ये हौसला
नेक है, सच्चा है जो, है वोट का हक़दार वो
वादे अपने भूले ना है अपना उम्मीदवार वो
रोज़ी रोटी तालीम सेहत हम सभी के पास हो
औरतें यहां हैं बराबर ये हमें अहसास हो
हमारी शिरकत के बिना जम्हूरियत है नाम की
जो तवज्जो दे न हमको वो पार्टी किस काम की

आर. डी. पी. में औरतों को कर्ज़ मिलेगा या नहीं? औरतों को मर्दों के बराबर मज़दूरी मिलेगी या नहीं? ऐसे सारे फ़ैसले हमारे चुने प्रतिनिधि लेते हैं। इसीलिए यह ज़रूरी है कि पंचायत, विधान सभा और संसद पर सिर्फ़ अमीर, 'सवर्ण', मर्दों का ही अधिकार न हो। इन राजतन्त्रों में अनुसूचित जन-जातिओं व औरतों की मौजूदगी ज़रूरी है ताकि वे अपनी आवाज़ उठा सकें और अपने हितों की रक्षा कर सकें।

औरतों की वोट जरूरी

आजकल राजनीति में पैसे, भ्रष्टाचार, हिंसा का इतना बोलबाला है कि औरतें उस से दूर ही रहना पसंद करती हैं। ऐसे गंदे माहौल में उनका जी पाना आसान भी नहीं है। दूसरी ओर राजनीति से दूर रहना, अपनी ज़िंदगी, समाज के बारे में लिए जाने वाले फ़ैसलों में दिलचस्पी न लेना भी अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मारना है। हम औरतें घर चलाने और सफ़ाई करने में माहिर हैं। हमें पंचायत घरों, संसद भवनों को भी चलाना सीखना होगा। राजनीति को भी साफ़ करना होगा। महात्मा गांधी और विनोबा भावे दोनों का यह मानना और कहना था कि अहिंसा और सच्ची राजनीति लाने के लिए महिलाओं को ही आगे आना पड़ेगा। हमें यह दोहराना चाहिए कि हमारी वोट के बिना प्रजातन्त्र या जमहूरियत आधी है। जब तक हम बोलेंगे नहीं, अपनी वोट का ठीक से इस्तेमाल नहीं करेंगे तो हमारे अधिकार, सहूलियतें भी अधूरी रहेंगी।

हम सभी को, खास तौर से औरतों को आने वाले चुनावों में ज्यादा से ज्यादा तादाद में हिस्सा लेना चाहिए और पूरी तरह सोच समझ कर वोट देनी चाहिए। हमें वोट लोगों की जाति, धर्म या लिंग देख कर नहीं बल्कि उनके विचार, योजनाएं, वादे, उनका व्यवहार देख कर देनी चाहिए। हमें हर उम्मीदवार से पूछना चाहिए कि वो कैसी योजनाएं बनाएंगे, क्या उनके और उनकी पार्टी के प्रोग्राम हैं। वो पार्टियां और वो उम्मीदवार जो धर्म व जाति के नाम पर हिंसा फैलाते रहे हैं, समाज को बंटवाते रहे हैं, ग़रीबी हटाने की जगह धार्मिक लड़ाइयों में लगे हैं, उन्हें वोट दे कर सत्ता में लाना मेरे विचार में बेवकूफ़ी होगा। हमें यह भी पूछना और देखना चाहिए कि हमारे उम्मीदवारों के औरतों के बारे में क्या विचार हैं। औरतों के हित में उनकी क्या योजनाएं हैं। हमें उनसे कहना चाहिए कि हम औरतें क्या चाहती हैं।

औरतों के संगठन बनाएं

औरतें अपनी आवाज़ तभी उठा पाएंगी जब हम संगठित होंगी। बिना संगठन के हमारी तरफ़ कोई ध्यान नहीं देगा। पंचायतों में भी वही औरतें कामयाब हो सकेंगी जिनके साथ और औरतें होंगी। जिनके पास संगठन की शक्ति होगी। कामकाजी, ग़रीब औरतों के संगठन और भी ज्यादा ज़रूरी हैं क्योंकि अगर वो आगे नहीं आएंगी तो अमीर तबके की और "ऊंची" जाति की औरतें हीं आरक्षित सीटों पर चढ़ बैठेंगी। ग़रीब तबके को कोई फ़ायदा नहीं होगा। राजनीति में सफल होने के लिए व राजनीति को अच्छी तरह चलाने के लिए हमें साक्षरता, शिक्षा, तकनीक का प्रसार औरतों में करना होगा।

हम सब को मुस्तैदी से राजनीति में दखल करने की तैय्यारी करनी चाहिए और अपने अधिकारों का पूरा इस्तेमाल करना चाहिए। वोट औरों को नेता बनाने के लिए नहीं बल्कि अपना भविष्य बनाने के लिए इस्तेमाल करनी है। □

पंचायत विधेयक क्या है?

रेणुका मिश्रा

पंचायत प्रणाली का मतलब है गांववासियों द्वारा चुने गए पांच व्यक्ति आपसी झगड़ों तथा गांव संबंधित सभी प्रश्नों का फैसला गांववालों के लिए करते हैं। पंचों की ज़िम्मेदारी होती है कि जो भी निर्णय लें वह न्यायपूर्ण होना चाहिए। इसलिए पंचों को पंच परमेश्वर माना जाता है। पंचायत व्यवस्था का मूल सिद्धांत है कि गांव स्तर पर निर्णय का अधिकार रहे, न कि कहीं दूर बैठी "सरकार" आम लोगों के जीवन की बागडोर अपने हाथ में रखे।

गांव लोकतंत्र की सबसे बुनियादी इकाई है। गांव के विकास के लिए यह जरूरी है कि गांव के लोग अपनी ज़रूरतों के अनुसार योजनाएं बनाएं और उन्हें लागू करें। अब तक यह होता आया है कि दूर बैठी "सरकार" योजना बनाती है और नौकरशाही उसे लागू करती है। इसमें आम लोगों की कोई भागीदारी नहीं रहती है।

अप्रैल 1993 में संसद ने 73वां संशोधन विधेयक पारित किया। इस विधेयक की खास बात है कि हर गांव में एक ग्रामसभा होगी। गांव का हर बालिग गांव सभा का सदस्य होगा। इस ग्राम सभा के हक़ और ज़िम्मेदारियां राज्य विधानमंडल तय करेगी।

चुनाव

गांव पंचायत के सदस्यों का सीधा चुनाव ग्राम सभा के सदस्य करेंगे। गांव और ज़िले के मध्य में एक और इकाई होगी। उसका व जिला स्तर की पंचायत का चुनाव ग्राम पंचायत के चुने हुए सदस्य करेंगे। ग्राम प्रधान का चुनाव किस प्रकार हो यह राज्य की सरकारें तय करेंगी।

एक बार चुन लिए जाने पर यह पंचायत पांच वर्ष तक कार्य करेगी। यदि किसी कारण पंचायत भंग की जाती है तो भंग करने के 6 माह के भीतर चुनाव करवाना होगा। पंचायत के चुनाव राजनैतिक पार्टियों के आधार पर नहीं होंगे।

राज्य स्तर पर एक स्वतंत्र चुनाव आयोग का

गठन किया जाएगा जो इस बात की देख-रेख करेगा कि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से करवाए जाएं।

आरक्षण

अनुसूचित जातियों और जनजातियों की संख्या के अनुपात में हर स्तर पर उनके लिए स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था है। अनुसूचित जाति व जनजातियों के कुल सदस्यों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। पंचायत के कुल सदस्यों में से एक तिहाई स्त्रियों के लिए आरक्षित हैं। इसके अलावा पंचायत के प्रधानों के लिए भी आरक्षण है। जिले में जिस अनुपात में अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग होंगे उतने प्रधान इन जातियों से होंगे। इसके अलावा एक तिहाई प्रधान महिलाएं होंगी।

राज्य स्तर पर हर पांच साल में एक वित्त आयोग की नियुक्ति होगी जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेगा। यही आयोग राज्य स्तर की व स्थानीय संस्थाओं के बीच कोषों के वितरण के बारे में राज्य सरकार से सिफारिश करेगा।

गांवों के कुछ कार्य पंचायतों को सौंप दिए जाएंगे। संविधान की ग्यारहवीं अनुसूचि की मदों में से कुछ ऐसी मदों का निर्देश किया गया है जो पंचायतों को सौंपी जा सकती हैं। ये ज्यादातर वे योजनाएं होंगी जो राज्य सरकार आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय निमित उन्हें सौंपना चाहें।

पंचायत के हक व ज़िम्मेदारियां

- सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास का प्लान बनाना।
- आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाओं को लागू करना।
- राज्य सरकार द्वारा पंचायत को यह हक दिया जा सकता है कि फीस और चुंगी जमा कर सकें और उसको गांव के विकास में लगा सकें।
- राज्य के कोष से पंचायत को अनुदान दिया जा सकता है।
- राज्य सरकार 73वें संविधान संशोधन के पारित होने के एक वर्ष के भीतर पंचायतों के हक और ज़िम्मेदारियां निर्धारित करने के लिए कानून बनाएगी।
- राज्य सरकार द्वारा गठित वित्त आयोग पंचायतों के आर्थिक कार्यों की देखरेख करके राज्य के गवर्नर को रिपोर्ट देंगे।

समस्याएं

इस कानून को लागू करने में कुछ समस्याएं आ सकती हैं। और ये ऐसी परेशानियां हैं जिन पर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो वह पूरे पंचायत कानून को मात्र कागज़ों तक सीमित रख सकती हैं।

इस संविधान संशोधन में प्रावधान किया गया है कि राज्य सरकारें कानून पारित कर पंचायतों को हक और ज़िम्मेदारियां दें। जहां एक ओर यह कहा गया है, वहीं दूसरी ओर 11 वें शेड्यूल में कुछ विषय दिए गए हैं। इसका अर्थ हुआ कि मात्र उन्हीं क्षेत्रों में राज्य सरकारें पंचायतों को कार्य करने का अवसर देंगी। यदि इन विषयों पर नज़र डालें तो स्पष्ट होता है कि पंचायत की ज़िम्मेदारियां विकास कार्यक्रमों और सामाजिक न्याय तक ही सीमित कर दी गई हैं। जहां तक प्रश्न स्वायत्त शासन का है, यदि पंचायतों को लोकतांत्रिक प्रणाली की नींव माना है तो यह लक्ष्य पूरा नहीं होता है। केंद्र और राज्य के स्तर पर तो जनतंत्र, परंतु गांव के स्तर पर मात्र अफसरशाही का राज्य

होगा जैसा कि अब तक होता आया है। इससे ढांचे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आएगा।

आज के माहौल में जहां केंद्र और राज्यों के बीच के हक और ज़िम्मेदारियां बांटने का सवाल एक विवाद का विषय बना हुआ है, वहां क्या यह अपेक्षा राज्य सरकारों से रखी जा सकती है कि वे पंचायतों को स्वेच्छा से स्वायत्त शासन, आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के हक दे देंगी? क्या राज्य और केंद्र के बीच के विवाद को सुलटाए बिना राज्य और पंचायत के बीच उठने वाले विवादों को हल किया जा सकेगा?

महिलाओं की भागीदारी

महिलाओं के लिए आरक्षण का जो प्रावधान है इसमें पहली बार सीधे राजनैतिक सत्ता में भागीदारी की बात कही जा रही है। यह 30 प्रतिशत का निर्णय कैसे और क्यों लिया गया? स्त्रियां राष्ट्र का 50 प्रतिशत हैं। यदि अनुसूचित जाति और जनजातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण की बात है तो स्त्रियों के साथ ऐसा क्यों नहीं?

दूसरा मुद्दा जो स्त्रियों के संबंध में उठता है वह यह है अमीर व ऊंची जाति के प्रभावशील लोगों के रिश्ते वाली महिलाओं को चुन लिया जाएगा। उनकी आवाज वही होगी जो उनके पति या रिश्तेदार कहेंगे? यह खतरा है, पर इसके प्रति सावधान रहना तथा महिलाओं के समूहों के लिए ज़रूरी है कि इसे समझें। इसके प्रति जागरूक रहें तथा ऐसी महिलाओं का चयन करें जो न केवल महिलाओं से संबंधित सवालों पर हस्तक्षेप करें बल्कि गांव के मसलों में सक्रिय भूमिका निभाएं। □

क्या यह बंटवारा सही है?

सुहास कुमार

हमारे सामाजिक ढांचे में स्त्री-पुरुष की भूमिकाएं व काम के क्षेत्र तय से रहते हैं। यही नहीं उनके गुणों को भी काफ़ी हद तक पहले से ही मानकर चला जाता है। स्त्री व पुरुष से कुछ खास गुणों व उन पर आधारित व्यवहार की उम्मीद की जाती है। शुरू से ही उन्हें इन सांचों में ढालने की कोशिश की जाती है।

औरतों के बारे में आमतौर से कहा जाता है कि वे भावना-प्रधान होती हैं। सोच समझकर काम नहीं करतीं। हमेशा हड़बड़ाई सी रहती हैं, उनकी कोई अलग साफ़ सोच नहीं होती। वे नई चीज़ सीखना नहीं चाहतीं। उन्हें आसानी से किसी भी ढांचे में ढाला जा सकता है। वे शिक्षक व ज्ञानी की सत्ता आसानी से स्वीकार कर लेती हैं। उनका राजनीति से कोई लेना देना नहीं है। उन्हें ऐसी घटनाओं में कोई दिलचस्पी नहीं है जो उनकी रोज़मर्रा की ज़रूरतों पर कोई असर नहीं डालतीं। महिलाएं दिमाग के बजाए दिल से सोचती हैं। व्यक्तिगत तौर पर सोचती हैं। भावुक होकर सोचती हैं।

□

स्त्रियोचित गुण	पुरुषोचित गुण
कमज़ोर, डरपोक	बहादुर, हिम्मत वाले
संकुचित विचारों वाली	महत्वाकांक्षी
आज्ञाकारी, दब्बू	आक्रामक, लड़ाकू
विनम्र, बहुत सक्रिय नहीं	क्रियाशील
अधीनता पसंद	शासन करना पसंद
धार्मिक लीक पर चलने वाली	स्वतंत्र, नया रास्ता अपनाने वाले
संवेगशील	तर्क एवं युक्ति पसंद
आत्मविश्वास की कमी	आत्मविश्वासी
लज्जाशील	गुस्ताख
शांतिप्रेमी	युद्धप्रेमी
सही व जल्दी फैसला न कर पाना	सही व जल्दी फैसला करने वाले
बातूनी, गंभीरता की कमी	गंभीर, परिपक्व

अच्छी औरत : बुरी औरत

वीणा शिवपुरी

कुछ समय पहले एक कार्यशाला में सहभागियों के सामने एक सवाल रखा था।

अच्छी औरत कौन है?

बुरी औरत कौन है?

इसके जवाब में सबने अलग अलग बातें कहीं—

अच्छी औरत मेहनती होती है।
— सबकी सेवा करती है।
— त्यागमयी होती है।
— अच्छी औरत ज़ोर से नहीं बोलती।
— सिर झुका कर चलती है।
— शरीर ढक कर रखती है।

बुरी औरत हंस-हंस कर बोलती है।
— पहनने ओढ़ने की शौकीन होती है।
— बीड़ी सिगरेट पीती है।
— शराब पीती है।
— पराये मर्दों से बात करती है।

इसी तरह की और बहुत सी बातें सामने आईं। हमने यह पूछा कि क्या वे सब मानती हैं कि सज-संवर कर रहने वाली, हंस कर बात करने या सिगरेट पीने वाली सभी औरतें वास्तव में खराब होती हैं? सबने कहा नहीं, हम ऐसा नहीं सोचती।

तो फिर ये जवाब कहां से आए थे?

ये जवाब समाज के सिखाए हुए थे।

यानि हम अब कहीं न कहीं अपने चारों तरफ़ के प्रभाव से इतनी प्रभावित होती हैं कि न मानते हुए भी उन्हीं बातों को दोहराती हैं जो बचपन से घर-परिवार और समाज हमें सिखाता है।

औरत की भूमिका

औरत कैसी होनी चाहिए, उसे कैसे बोलना-चालना चाहिए, पत्नी, बेटी, बहन और मां के रूप में उसका व्यवहार कैसा होना चाहिए यह सब कुछ निश्चित कर दिया गया है। उसमें अलग-अलग व्यक्तित्व, पसंद-नापसंद के लिए जगह ही नहीं है। हर औरत के लिए एक तयशुदा सांचा तैयार है। नासमझ बच्ची को छोटी उम्र से ही डांट-डपट कर या प्यार, शिक्षा, उदाहरण के ज़रिए उस सांचे में फिट होने के लिए तैयार किया जाता है। अगर वह उस सांचे में भली तरह फिट हो गई तब तो वह अच्छी औरत है। यदि उसने उससे हट कर कुछ करने की कोशिश की या अपनी कुछ और पसंद जतलाई तो वह बुरी औरत कहलाती है।

पूरब हो या पश्चिम

अभी कुछ दिन पहले मुझे देश के पूर्वी भाग आसाम जाने का मौका मिला। वहां एक लड़की से बात करते हुए उसने कहा—"मां कहती है लड़की को एक मिनट भी खाली नहीं बैठना चाहिए।"

यह कोई नई बात नहीं है लेकिन फिर भी मुझे सुन कर ताज्जुब हुआ। मुझे आज से तीस-पैंतीस साल पहले राजस्थान के एक गांव में अपनी मां के कहे हुए शब्द याद आ गए।

मां मुझे कहती थी—"लड़की का काम प्यारा होता है, चाम नहीं।"

कितनी समानता है इन दोनों बातों में। चाहे देश का पश्चिमी भाग हो या पूरब। समय चाहे सन् 1993 हो या चालीस साल पहले का। हर मां एक-सी भाषा क्यों बोलती है। हर बेटी को एक ही सांचे में ढालने की कोशिश क्यों करती है।

क्योंकि उस मां को भी समाज ने यही सिखाया है। हम सब आगे आने वाली पीढ़ियों की बेटियों को भी वैसा ही बनाती जाती हैं। यह चक्र चलता रहता है। अगर ये चक्र टूट जाए तो जरूर कुछ नई तरह की औरतें निकलेंगी। जो शायद अपनी बेटियों को अपने व्यक्तित्व के हिसाब से पलने बढ़ने का मौका देंगी। तब शायद यह लड़की की अपनी मर्जी पर निर्भर होगा कि वह खेल-कूद की शौकीन हो या गंभीर रहने की। ज़ोर से बोले या धीरे। हंसे या चुप रहे। सीधी भाषा में यूं कहें कि वह वैसे जिए जैसा वह चाहे। आज औरत को वह आज़ादी नहीं है।

उस बालपन की उम्र में भी मैं मां की बात सुन कर अपने मन में सवाल करती थी—"मां मुझे सिर्फ़ इसलिए प्यार क्यों नहीं करती कि मैं इनकी बेटी हूं। अगर सिर्फ़ काम प्यारा होता है फिर तो ज़रूर ये नौकरानी को ज़्यादा प्यार करती होंगी जो बहुत काम करती है।"

औरत एक मोहरा

समाज की पितृसत्तात्मक बिसात में औरत एक मोहरा है। वह भी सबसे छोटा। उसकी चाल सिर्फ़ एक घर की है। अगर उसने उछल कर लम्बी चाल चलनी चाही तो उसे रोकना चाहिए, तभी खेल चलेगा।

समाज और परिवार में अगर औरत ने मेहनत करने, त्याग करने या दुख सहने से इनकार कर दिया तो पुरुषों का राज नहीं गिर जाएगा? बस इसीलिए बनाई है अच्छी औरत और बुरी औरत की छवि। यानि औरत की नाक में नकेल डाल दी है। अब वह मनमर्जी से कुछ नहीं करत सकती वरना बुरी कहलाएगी। और बुरा कौन कहलाना चाहता है?

लेकिन सवाल यह है कि अच्छी और बुरी का फ़ैसला हमारे हाथ में क्यों नहीं? □

वो सब कुछ करती है .....मगर फिर भी

खेतों में करती नलाई और गुड़ाई है
यह लहराती फसल मर्दों के संग उसने उगाई है
वो बच्चे पालती है साथ में रोज़गार करती है
कड़ी मेहनत के बल पर चार पैसे घर में लाती है
वो पत्थरों को तोड़ती है धूप में सड़क बनाती है
गगनचुम्बी इमारत की नींव बनाती, ऊपर उठाती है
वो मिल में काम करती है मशीनों को चलाती है
वो तरह-तरह के काम करती
ठोकरें दर-दर की खाती है
वकालत भी करती है मुकदमे भी जिताती है
वो पूरे देश को ताज़ा खबरें भी सुनाती है
वो हर सुंदर कला को और भी सुंदर बनाती है
वो अपनी ममता त्याग से घर संसार बसाती है
हर तरह की मेहनत वो करती है
फिर भी कुछ न करने की तोहमत उस पर लगती है
वो सबला है पर दुनिया उसे अबला बताती है
उसे कमज़ोर कहकर उसे नीचा दिखाती है
वे उसकी ज़िंदगी को नरक से बदतर बनाते हैं
हज़ारों बंदिशों के रात दिन पहरे बिठाते हैं

साभार: समता कला जत्था

ज़ंजीरो को तोड़ कर

जुही जैन

घुट-घुट कर जीती रही सुमन

सुमन अपने मां-बाप की लाड़ली बेटी थी। स्वभाव से हंसमुख और मिलनसार। पिता की आमदनी ज्यादा नहीं थी। इसलिए जब राकेश ने खुद सुमन से शादी करने का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने खुशी-खुशी मान लिया। सोचा, पढ़ा-लिखा घर-वर है। लड़की खुश रहेगी।

शादी के बाद पहली करवा चौथ आई। ससुराल में बड़े चाव से तैयारी हुई। पर सुमन ने व्रत करने से इंकार कर दिया। सास का मुंह चढ़ गया। एक तो अपने मन की शादी, उस पर यह तेवर। पति परमेश्वर होता है। पति ने भी समझाया। मां का कहना मान लेने में हर्ज ही क्या है। हार कर सुमन ने सास की बात मान ली।

पूरा दिन सुमन ने पानी भी नहीं पीया। जब काफ़ी रात गए राकेश नहीं लौटा तो उसने व्रत खोल लिया। रस्म के लिए लोटे की पूजा कर ली। सास गुस्से से आग-बबूला हो उठी। 'करमजली को मां-बाप ने कुछ नहीं सिखाया। मेरा नौ-हाथ का बेटा जीता रहे और यह लोटा पूज रही है। हे भगवान इसकी मति मारी गई है।'

इधर सुमन खाना खाकर उठी। उधर खबर आ गई। राकेश शराब पीकर गाड़ी चला रहा था। ट्रक से टकरा गया। घटना स्थल पर ही दम तोड़ दिया।

पति क्या गया, सुमन की दुनिया उजड़ गई। उसका सर मूंड दिया। सब श्रृंगार उतार लिए। और घर के एक कोने में डाल दिया। सास कहती, 'कुलछिनी, बेटे को खाकर भी जिंदा है। मनहूस, ना लोटा पूजती, ना बेटा जाता'।

मां-बाप कहते, 'अब जैसा भी है तेरा घर वही है। तेरा जीना मरना वहीं है।'

तो फिर सुमन जाए कहां? वह खून के आंसू पीती रही। घुट-घुट कर जीती रही। आखिर क्या करती। वह मजबूर थी।

पति के साथ सती हो गई रूपा

अभी रूपा को सोलह साल पूरे भी नहीं हुए थे कि ससुराल वाले गौना लेने आ गए। रूपा की मां ने बहुत मना किया, पर बाप नहीं माना।

बाली उमर क्यूं ब्याह रचायो
भूत भविष्य भयो अंधियारो
क्यूं न हमको पाठ पढ़ायो
कच्ची उमर में फल उगायो
दोष भयो क्या मोरो इसमें
अबला कह कमज़ोर बनायो
भान हुयो तो अब मैं जागी
पढ़ने की ज़िद मन में ठानी
उमर नहीं दावात कलम की
आंख खुली जद शुभ दिन आयो
घर-घर जाय सबने जगासूं
बाल-विवाह को बंद करवासूं
पोथी-पाटी हाथ थमासूं
झांसी-दुर्गा याद दिलासूं
सबला बन जीना सिखलासूं
औरत को उसकी पहचान करासूं

मुन्नी पुरोहित

सूर्यवंशी राजपूत खानदान की बेटी है। गांव में मान है। विदा करनी ही होगी। मां ने बेटी को सीख दी, 'हम राजपूत हैं, किसी को अपनी पीठ नहीं दिखाते। तेरे बाप की पगड़ी की लाज तेरे हाथ में है। किसी को शिकायत का मौका न मिले।'

रूपा का पति खेतों में काम करता। रूपा सास-ससुर की सेवा करती। सब उससे बहुत खुश थे। फिर अब तो उसका पैर भी भारी था। मायके से फल-मेवे के थाल आए। ससुराल में ढोल-ताशे बजे।

पर किस्मत का लेखा कौन टाले। एक दिन पति को खेत में सांप डस गया। रूपा विधवा हो गई। सारा गांव दुखी था। छोटी उम्र और इतनी नेक बहू। खैर जो होना था हो गया। राजपूत थे। भाग्य में पति का साथ न था। अब सती होकर मोक्ष को जाएगी, गांव की इज्जत बढ़ाएगी। राजपूत खानदान की मर्यादा की रक्षा करेगी। हवन की तैयारी हुई। रूपा का श्रृंगार किया गया। पर रूपा मना कर रही थी।

लोगों पर जैसे जुनून सवार था। आंखों में श्रद्धा थी। जयकार हवा में गूंज रही थी। रूपा सती माता बनने जा रही है। पतिव्रता है, सती है। और रूपा घायल हिरनी की भांति सबको देख रही थी।

धू-धू करके चिता जली। और जिंदा जली रूपा। किसी को उसकी चीख पुकार सुनाई न दी। उसे देवी बनाया गया। जबर्दस्ती। और वह लाचार थी। आखिर करती भी क्या?

जानकी कहां है, कौन जाने

आज पूर्णिमा है। रालेगांव में मेला जुटा है। गरीब हरिजन और श्रांवंथी बहुत खुश हैं। उनकी बेटी जानकी का बुलावा आया है। येलम्मा देवी की सेवा के लिए। जानकी भी आज बहुत खुश है। उसे लाल कांजीवरम की साड़ी मिली है। बालों में फूल की वेणी है। माथे पर लाल बिंदिया। पैरों में पाजेब। आज उसकी शादी है देवी मां के साथ। पंडित जी आए। मंत्र पढ़े। फिर लाल-सफेद मोतियों की माला पहनाई। अब जानकी सुहागिन है।

पांच साल गुजर गए जानकी के ब्याह को। आज फिर पूर्णिमा है। पर क्या बात आज जानकी खुश नहीं है। खुश कैसे हो। आज उसे देवदासी बनाया जाएगा। जब शादी हुई थी तो उसे पता ही नहीं था कि क्या हो रहा है। पर आज मन करता है कहीं भाग जाए। पर कहां जाए?

पूरा गांव खुश है। मां-बाप सौभाग्यशाली समझ रहे हैं खुद को। एक बार फिर पंडित जी आए। उनकी आंखों में जैसे दुनिया भर की वासना थी। मुंह से जैसे लार टपक रही थी।

जानकी को आज फिर पूरे गांव में घुमाया गया। हर घर से उसे कुछ न कुछ उपहार मिला। गहने, रुपये, अनाज। फिर उसे मंदिर ले जाया गया। सब लोग बाहर खड़े रहे। केवल पंडित जी उसके साथ गुफा में गए। वहां उसे पंडितजी की मौजूदगी में नग्न होकर देवी येलम्मा की पूजा करनी थी। फिर पंडित जी ने उसके साथ सहवास किया। अब वह देवदासी थी। मंदिर की जायदाद। लोगों में प्रसाद बंटा। और सब देवी का गुणगान करते घर को चले गए।

और जानकी, वह क्या करे? अब उसे इस मंदिर में रोज किसी नए पुरुष की हवस का शिकार बनना पड़ेगा। कैसे जीए जानकी। क्या करे, किससे मदद मांगे। कैसे समझाए लोगों को यह मान नहीं, अपमान है।

हम भी पूछें सवाल

सास के रोज़ के तानों और मां-बाप से कोई सहारा न मिल पाने की वजह से सुमन तंग आ गई। हार कर उसने जहर खाकर आत्महत्या कर ली।

रूपा जिस जगह सती हुई वहां मंदिर बनाया गया। हर साल वहां मेला जुड़ता है। सास-ससुर, मां-बाप कहते हैं यह सब देखकर रूपा की आत्मा बहुत प्रसन्न होगी।

जानकी को खुद अपने आप से नफरत हो गई। एक दिन आधी रात को वह ना जाने कहां चली गई। उसका आज तक कोई पता नहीं चला है।

सुमन, रूपा और जानकी की जिंदगी हमारे अपने जीवन से कितनी मिलती-जुलती है। यह घटनाएं अपने आप में अनोखी नहीं हैं। हम सब इनका शिकार हैं।

तो सवाल है, इनकी इस स्थिति का जिम्मेवार कौन है। मां-बाप, समाज, पति या हम खुद। सवाल यह भी है कि रिवाजों, इज्जत और मर्यादा के नाम पर औरतें कब तक जुल्म सहती रहेंगी। अपनी स्थिति के लिए भाग्य को कब तक दोषी बनाती रहेंगी। आप ही बताएं।

अगर सुमन लोटा ना पूजती तो क्या उसका पति बच जाता?

क्या रूपा का सती होना, मर्यादा बरकरार रखने के लिए जरूरी था?

क्या जानकी वास्तव में देवी की सेवा कर रही थी?

जवाब है, नहीं।

तो फिर हम क्या यह मान लें कि समाज में

हमें सम्मान का दर्जा तभी मिलेगा जब हम देवी बनकर जीएं। क्या हम आम इंसान बनकर सम्मान और हक के अधिकारी नहीं?

हम जानते हैं कि संसार की आबादी का आधा हिस्सा औरतें हैं। वे घर, परिवार, समाज की जिम्मेवारी बखूबी से निभाती हैं। फिर ये हक़ उन्हें क्यों नहीं मिलते। अगर औरतों के गिरे हुए दर्जे का जिम्मेवार समाज है, जो इस समाज को बदलना होगा। इसकी व्यवस्था को बदलना होगा।

हमारे ही देश के नीलगिरि पहाड़ पर रहती है टोडा आदिवासी जाति। इस समाज में औरतें किसी से कम नहीं। सभी हक़ उनके पास हैं। क़ानून बनाने और निर्णय लेने में उनकी मर्जी की उतनी ही अहमियत है जितनी पुरुषों की। अगर वहां ऐसा है तो क्या हमें यह हक़, यह सम्मान पाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए? □

जुल्म के खिलाफ

खामोश रहने से कभी
हक़ नहीं मिला करते
अपने अधिकारों के लिए
खुद ही लड़ना पड़ता है
कमज़ोर मत समझो खुद को
तुम अबला कहां हो?
सत्य साथ है, मन में है दृढ़ता
फिर क्या डरना, क्यों दबना?
आत्मविश्वास भरो मन में
उठो! अपने स्वरों में जान डालो
मूक आह्वान को शब्द दो
बहुत हो चुका, बहुत सह लिया
अब और नहीं, अब और नहीं!!

सरला अग्रवाल

शास

पुरुष प्रधान ढांचे में औरत की मेहनत

घर का मालिक पुरुष होता है। उसी के हित में पूरा पारिवारिक ढांचा तय होता है। औरत की जिम्मेदारी है कि वह घर व बच्चों की पूरी देखभाल करे ताकि पुरुष बाहर जाकर पैसा कमा सके।

औरत जब बाहर काम करती है तो भी पुरुष तय करता है कि वह कौन सा काम करेगी। कितने समय वह घर से बाहर रह सकती है। जो वह कमा कर लाती है उस पर उसका कब्ज़ा नहीं होता। उसे अपने ढंग से खर्च करने की आज़ादी नहीं होती।

चूंकि औरत के काम की परिभाषा मर्दों द्वारा दी गई है उसके काम की कीमत उनकी सोच के हिसाब से आंकी जाती है। घर के कामों की तो कोई कीमत है ही नहीं। बाहर के क्षेत्र में भी बराबर की मेहनत करने पर भी कीमत कम लगाई जाती है।

उसी काम के लिए चाहे व निर्माण के काम से जुड़ा हो या खेती के काम से या किसी और पुश्तैनी काम से, औरतों को कम मेहनताना दिया जाता है। यही नहीं, ऊंचे पद तक उन्हें कम ही पहुंचने दिया जाता है। मान-सम्मान, प्रतिष्ठा की तो बात ही क्या की जाए?

सामाजिक लिंग-भेदभाव से औरत और मर्द के कामों का बंटवारा किया जाता है। यह ज्यादातर पुरुष ही तय करते हैं कि क्या काम औरतें कर सकती हैं और क्या नहीं? कई पूर्वाग्रहों की वजह से वस्तु स्थिति का पता किए बिना औरतों को कई क्षेत्रों में काम नहीं दिया जाता है।

महीन कारीगरी व हाथों द्वारा महीन काम औरतों का क्षेत्र माना जाता है। भारी मशीनों को चलाने का क्षेत्र पुरुषों का। कुछ हद तक यह बंटवारा प्राकृतिक आधार पर सही हो सकता है। गड़बड़ी तब पैदा होती है जब औरतों के काम को कम महत्व देकर कम मेहनताना दिया जाता है।

पुरुष अपनी स्त्रियों व लड़कियों का श्रम बेचते भी हैं। (भीख मंगवाकर, वेश्यावृति करवाकर या बेचकर)। इसमें आर्थिक रूप से फायदा उन्हीं का होता है।

कौन?

कुमार

औरत जो भी करे मर्दों के मुकाबले में आधा अच्छा कहलाने के लिए उसे दोगुनी मेहनत करनी पड़ती है।

औरत की जनन शक्ति और यौनिकता पर कब्जा

औरत कितने बच्चे पैदा करेगी पुरुष तय करता है। घर का मालिक ही तय करता है कि उसे कितने वंशधर चाहिए। अगर औरतों के लड़कियां ही पैदा होती हैं तो सोचा जाता है कि उनकी प्राकृतिक बनावट में ही कुछ गड़बड़ी है। परिवार नियोजन के तरीके का फैसला भी औरतों के लिए मर्द ही करते हैं।

बच्चों का प्राकृतिक अभिभावक पिता माना जाता है। उनका सही लालन-पालन कैसे किया जाए इस पर पुरुषों की सोच का पूरा असर होता है।

लड़कियों को अपने ही शरीर की प्राकृतिक बनावट व विकास प्रक्रियाओं से अनजान रखकर उन्हें पाला जाता है। उनकी यौनिकता के बारे में कोई भी बात करने की पूरी मनाही है लेकिन दूसरी ओर पुरुषों की यौनिकता पूरी करने के लिए उसे सुंदर दिखना व बनना होता है। पुरुषों की ज़रूरतों के हिसाब से औरतों को यौनिक सेवाएं देनी पड़ती हैं।

पुरुष शादी के बाहर भी यौन-संबंध रख सकता है। लेकिन औरत के लिए इसकी सख्त मनाही है। इस तरह पुरुष स्त्रियों के शरीर पर अपना नियंत्रण रखते हैं। बलात्कार और शीलभंग तथा बलात्कार का डर दिखाकर वे औरतों को अपने अधीन रखते हैं।

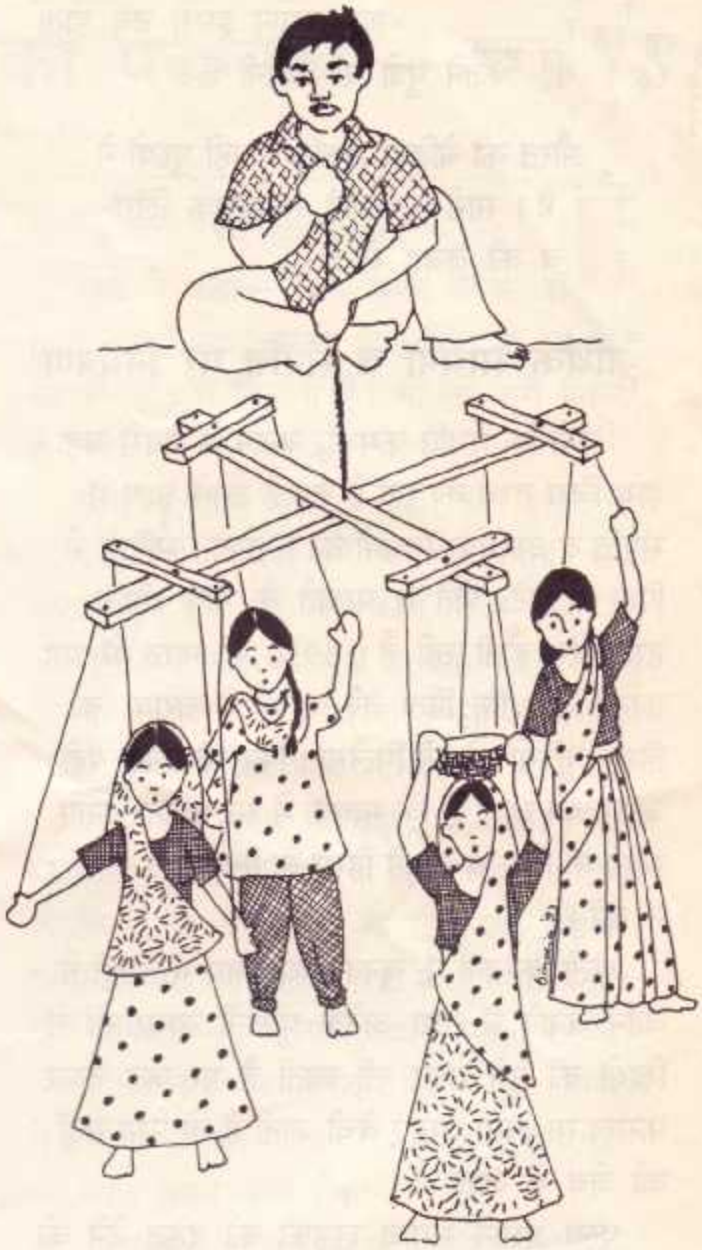

अपनी यौनिकता की ज़रूरत पूरी करने के लिए औरत का कोई भी व्यवहार गैर-सामाजिक माना जाता है। दूसरी ओर औरत के शरीर का भरपूर भोग उन्हें वैश्या बनाकर किया जाता है।

बच्चा न पैदा हो या लड़कियां ही पैदा हों तो इसका कारण औरतों में दोष होना मान लिया जाता है। उन्हें लांछना और अपमान मिलता है। कई बार पति उन्हें छोड़ कर दूसरी शादी रचाते हैं।

औरत का दर्जा, मान-सम्मान इससे तय होता है कि वह कितने पुत्रों की जननी है।

औरत की बेड़ियां प्रकृति ने नहीं पुरुषों ने बनाई हैं। सारी समस्याएं सामाजिक लिंग-भेदभाव की वजह से हैं।

आर्थिक साधनों व संपत्ति पर नियंत्रण

स्त्रियों कि स्थिति कमज़ोर बनाने में सबसे बड़ा हाथ जिस तथ्य का रहा है वह है उनके हाथ में संपत्ति व आर्थिक साधनों का न होना। सदियों से पिता से बेटे, पोते व परपोते के नाम संपत्ति हस्तांतरित होती रही है। 1956 में भारत में यह क़ानून बना कि पिता की कमाई में बराबर का हिस्सा पुत्रियों को भी मिलेगा। फिर भी उनसे यही आशा की जाती है कि मायके में सदभावना बनाए रखने के लिए वे अपने हिस्से के लिए कोई दावा न करें।

खेती किसानी में, बुनकर व्यवसाय में, मिट्टी के बर्तन बनाने में तथा अनेक पुश्तैनी व्यवसायों में स्त्रियों की पूरी मदद ली जाती है पर जब तैयार फसल या अन्य वस्तुएं बेची जाती हैं तो पैसा मर्दों की जेब में जाता है।

पुरुष प्रधान समाज लड़की को दहेज देने को तैयार है, पर संपत्ति में हिस्सा नहीं। कई बार देखा गया है कि ब्याह के समय दी गई संपत्ति की भी आशा की जाती है कि दामाद के नाम की जाए। सती के नाम पर युवा स्त्रियों को जलाने की प्रथा के पीछे एक भावना यह भी है कि उनको संपत्ति न देनी पड़े।

कुछ बिरादरियों में भाई की विधवा का देवर के साथ ब्याह या चादर डालने के रिवाज़ के पीछे भी यही भावना है कि संपत्ति घर में ही रहे। लड़के की विधवा को न देनी पड़े।

जिन समाजों में जैसे केरल में संपत्ति मां से पुत्रियों के नाम जाती है वहां भी उसकी व्यवस्था भाई के जिम्मे रहती है। कई पैसेवाले घरों में टैक्स बचाने के लिए संपत्ति महिलाओं के नाम कर दी जाती है। पर कब, कहां पैसा लगाना है यह फैसला पुरुषों के हाथ में रहता है।

कुछ भी संपत्ति उनके नाम न होने के कारण कोई व्यवसाय शुरू करने के लिए महिलाओं को कर्ज़ा भी मुश्किल से मिल पाता है। औपचारिक व अनौपचारिक रूप से संपत्ति व आर्थिक साधनों पर स्त्रियों को कब्ज़ा न देना उन्हें उनके बुनियादी इंसानी अधिकारों से वंचित रखना है। संपत्ति पर स्त्रियों को अधिकार देना तो दूर, खुद उन्हें संपत्ति के रूप में देखा जाता है। □

लड़कियों की पंचायत

वीणा शिवपुरी

हमेशा की तरह आज भी किशन ने घर आकर मां से मुनिया की झूठी शिकायत की। मां ने झल्ला कर मुनिया को कस-कस के दो-तीन झापड़ धर दिए। खटिया पर पड़ी दादी तो वैसे ही रात दिन मुनिया को कोसती रहती है। किशन की बात सुन कर उसने भी मुनिया को डांटा। किशन को अपने पास बुला कर पुचकारा। साड़ी के खीसे से मिसरी की पुड़िया निकाल कर चुपचाप पकड़ा दी। जब मुनिया ने आंसू भरी आंखों से पुड़िया को ताका तो दादी चिल्लाई—

"क्या दीदे फाड़-फाड़ कर देख रही है। नज़र लगाएगी मेरे लाल को। चल मर यहां से।"

मुनिया रोती-रोती गौशाला में चली गई। काली गैया की बछड़ी से खेलते-खेलते कब वहीं पुआल पर उसे नींद आ गई, पता भी न चला।

सपने में उसने देखा कांता, कमली, सत्तो, इमरती—उसकी सारी सहेलियां बरगद के पेड़ के नीचे जमा हैं। सब चुपचाप उदास बैठी हैं।

मुनिया ने पूछा—"आज खेलोगी नहीं?"

इमरती बोली—"नहीं। पिताजी भैया के लिए किताब लाए, मेरे लिए नहीं।"

सत्तो ने कहा—"मैंने सुबह से घर साफ़ किया, पानी भरा, कपड़े धोए फिर भी मां मोहन को ही गोद में बिठाती है। घी की चूरी खिलाती है।"

सब लड़कियां बोलीं—"हां, हां। हमारे साथ भी यही होता है। कोई हमें प्यार नहीं करता। सब डांटते रहते हैं। सारे दिन काम, काम, काम।"

मुनिया ने कहा—"सुनो री, क्यों न हम अपनी पंचायत बनाएं। उसमें अपना-अपना मुकदमा लाएं। अपराधी को सज़ा दिलाएं।"

"अरे वाह। तब तो बड़ा मज़ा रहेगा।" सब लड़कियां खुशी से तालियां बजाने लगीं। पांच लड़कियां पंच बनीं। पेड़ के नीचे एक बड़े से पत्थर पर बैठ गईं। बाकी सभी चारों तरफ़ बैठीं। पंचों ने कहा— पहला मुकदमा सामने लाओ।

कमली ने उठ कर मुकदमा पेश किया। "सरकार, ये हैं राधा के माता-पिता। ये दस साल की राधा का ब्याह करने वाले हैं।"

"क्या कहा? दस साल की बच्ची का ब्याह",

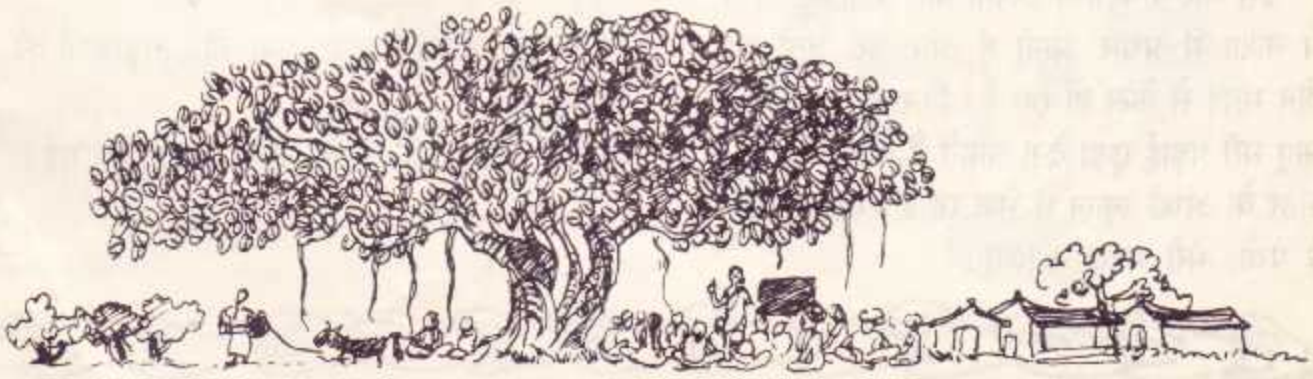

पांचों पंच एक साथ बोलीं।

"अरे, अभी उस बच्ची के खेलने, खाने और पढ़ने के दिन हैं। उसका मन और शरीर ब्याह और बच्चों का बोझ उठाने लायक नहीं। तुम उसके माता-पिता होकर ऐसा अन्याय कर रहे हो, बड़े शर्म की बात है।"

पंचों ने आपस में सिर जोड़ कर सलाह मशविरा किया और फ़ैसला दिया—

"हमारा हुक्म है जब तक राधा अठारह-बीस साल की नहीं हो जाती तुम उसका ब्याह नहीं करोगे। और तब तक तुम उसके स्वास्थ्य का ध्यान रखोगे। उसें खूब पढ़ाओगे-लिखाओगे। समझे!"

कमली फिर खड़ी हुई—

"सरकार, ये कौशल्या का छोटा भाई रामू है। घर में कुछ काम नहीं करता। सारे दिन गलियों में खेलता-फिरता है। घर आकर अपने छोटे-छोटे कामों के लिए कौशल्या पर रौब जमाता है। कल ही इसने उसकी गुड़िया जानबूझ कर तोड़ दी।"

"अच्छा! यह तो गंभीर बात है" पंच बोलीं।

"रामू तुम आज से ही घर के सारे कामों में राधा की मदद करोगे। अपनी जेब खर्च के पैसों में से बचा-बचा कर कौशल्या को नई गुड़िया लाकर दोगे वरना तुम्हारे सारे खिलौने छीन लिए जाएंगे। अब जाओ।"

इस बार कमली ने अपनी बात कही—"पंचो, मैं कक्षा में प्रथम आती हूं और मेरा बड़ा भाई तीन साल से फेल हो रहा है। फिर भी मां और बापू मेरी पढ़ाई छुड़ा देना चाहते हैं और भैया को शहर के अच्छे स्कूल में भेज रहे हैं। यह अन्याय है पंचो, मेरी मदद कीजिए।"

"तुम ठीक कहती हो कमली। जो अधिक योग्य है उसे आगे बढ़ने का मौका मिलना चाहिए। कमली के माता-पिता को हुक्म दिया जाता है कि वो कमली को शहर के अच्छे स्कूल में भेजें। कमली के भाई को गांव के स्कूल में पढ़ाते हुए शाम के समय बढ़ई का काम सिखाएं।"

पंच उठने लगीं।

अब मुनिया चिल्लाई—

"रुकिए, रुकिए। मेरी दादी मुझे हमेशा डांटती रहती है। भाई की झूठी शिकायत पर मां भी मुझे मारती है। मैं बहुत दुखी हूं सरकार।"

पांचों लड़कियां फिर बैठ गईं और बोलीं, "मुनिया के भाई को झूठ बोलने के अपराध में सात दिन तक मुनिया की हर आज्ञा माननी पड़ेगी। मुनिया की मां और दादी भी मुनिया को गोद में बिठाकर खूब लाड़-प्यार करेंगी वरना हम उन्हें भी सज़ा देंगीं।"

"मुनिया— ओ मुनिया, उठ। सोते-सोते क्या बड़बड़ा रही है। देख, शाम ढल रही है।" मुनिया की मां ने उसे जगाया।

मुनिया चिल्लाई—"सबको मेरी बात माननी पड़ेगी। मुझे खूब प्यार करना पड़ेगा। वाह, क्या मज़े की बात है।"

मुनिया तालियां बजाती हुई घर से बाहर दौड़ गई।

हम तो अपनी पंचायत बनाएंगी। लड़कियों की पंचायत।

मां चकित सी उसके पीछे देखती रह गई।

□

औरत औरत का सहारा बने

सुहास कुमार

''जैसे ही नव-विवाहिता की डोली दरवाज़े पर उतरती है, सबसे पहले औरतें ही उसके यहां से आए सामान पर टीका टिप्पणी करती हैं। यह बहुत कम होता है कि पुरुष वर्ग से यह उलाहना सुनने को मिले।''

''ससुराल में महिलाएं ही सबसे पहले नव-वधू का निरादर शुरू करती हैं। उसके पति के कान भरती हैं। उसे मज़बूर करती हैं कि वह पत्नी के साथ बुरा सलूक करें।''

—सुरेन्द्र कु. त्रिपाठी, प्रेरक

बेटियां ही पैदा होती हैं तो सबसे ज्यादा उलाहने सास ही सुनाती है।

मर्दों से भी दो पग आगे बढ़ जाती है
सच है औरत ही औरत को तड़पाती है
सास बन ज्यों बहू से बदला लेती है
जितने ज़ुल्म सहे दुगुने देती है
बेटियों को बोझ मान पालती
पीढ़ी दर पीढ़ी यही सिलसिला चलाती

—मुकुल लाल, बनहरा

जब भी हम नारी शोषण व अत्याचार की बात करते हैं सबसे बड़ा तमाचा हमारे मुंह पर यह पड़ता है कि औरत ही औरत की सबसे बड़ी दुश्मन है। आप कितनी ही सफाई दें कि इसका कारण पुरुष प्रधान सामाजिक तंत्र है। औरत को ताक़त व मान सम्मान एक पुत्र की माता होने के नाते ही मिलता है। यह बात किसी के पल्ले नहीं पड़ती। कारण यह है कि इस सामाजिक ढांचे को उसी तरह चलाए जाने के लिए जितना पुरुष ज़िम्मेदार है उतना ही नारी भी, शायद उससे भी ज्यादा।

कुछ ज्वलंत सवाल

आज हर औरत को ठंडे दिमाग़ से सोचने की ज़रूरत है कि ऊपर लिखी बातों में कितनी सच्चाई है। अगर ये बातें सच हैं तो क्या हम अपना सामाजिक ढांचा इसी तरह चलने देना चाहती हैं। क्या हर मां बेटी से ज्यादा बेटे को प्रधानता देती रहेगी? क्या बेटे पर ही प्यार दुलार लुटाती रहेगी? बेटी के प्यार को ठुकराकर बेटे-बहू के हाथों उपेक्षित होना पसंद करेगी? क्या सास-ननद सदा बहू को परेशान करती रहेंगी। बेटी के हाथ पीले कर अपने को उसके प्रति पूरी ज़िम्मेदारी से मुक्त समझेंगी?

बेटी-बेटा दोनों ही एक कोख से जन्म लेते हैं। प्रकृति ने दोनों को कुछ ऐसे पूरक गुण दिए हैं जिनसे सृष्टि आगे चलती रहे। उसने दोनों में से किसी एक को बेहतर और दूसरे को कम अच्छा नहीं बनाया है। यह हमारे समाज की देन है कि

शोषण या सहारा ?

स्त्री का मन एक हीन-भावना से भर जाता है। स्त्री स्वयं अपने गुणों को दोष, अपनी ताकत को कमज़ोरी के रूप में देखने लगती है।

चक्रव्यूह से कैसे निकलें?

यह लिंग-भेदभाव की एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जो बच्चे के पैदा होने के समय से शुरू हो जाती है। बेटी के स्वाभाविक गुणों का विकास होने देने के बजाए हम उन्हें दबाना चाहते हैं। इसलिए सबसे पहले हमें अपनी सोच बदलनी होगी।

बेटी को बेटे के बराबर ही स्वस्थ विकास के अवसर दें। उसको भी उतना ही समर्थ बनाएं तभी हमारे मनों से उसके बोझ होने की भावना निकलेगी। समर्थ बेटी समर्थ बेटे से ज्यादा मां-बाप का सहारा बन सकती है। आदर्श पत्नी और आदर्श मां से परे भी वह कुछ है। क्या उसकी पहचान हम सिर्फ इन रिश्तों के सहारे ही चाहते हैं?

बहू के घर में आते ही सास-ससुर, ननद-देवर, जेठ-जिठानी सब उस पर अपना अधिकार समझने लगते हैं। एक औसत हिंदुस्तानी परिवार में बहू से अपेक्षाओं की सीमा नहीं रहती। यही नहीं कि उससे सिर्फ पूरे परिवार की देखभाल की आशा की जाती है बल्कि उसके आराम, उसकी देखभाल के प्रति कोई भी अपनी कुछ ज़िम्मेदारी नहीं समझता। उसके हिस्से में ताने, शिकवे शिकायतें ही आती हैं। क्या इस सोच को बदला नहीं जा सकता ?

क्या ही अच्छा हो यदि बहू बीमार पड़े या थक जाए तो उसको स्नेह भरी देखभाल मिले।

ब्याह के बाद बहू के रूप में घर का एक सदस्य बढ़ जाता है। अगर गहराई से सोचें तो पाएंगे कि घर में उसका बहुत योगदान रहता है। अगर घर का कुछ धंधा या व्यवसाय है तो वह श्रम वहां भी लगाती है। घर का खर्च पूरा न पड़े तो बाहर जाकर भी काम करती है। फिर क्यों लड़के के घरवाले संग में दहेज़ की कामना करते हैं? क्यों उसे हीन भावना से भर देने वाली इस प्रथा को लड़के व लड़की दोनों के माता-पिता चलाए जा रहे हैं? लड़की को जायदाद में हिस्सा नहीं देंगे, लेकिन उसके ब्याह में हैसियत से ज्यादा खर्च करने को तैयार रहते हैं?

अपना हित समझें

औरतों को सोच-समझकर, अपने व्यापक हितों को देखकर ही परंपराएं व रीति रिवाज़ चलाने चाहिए। अगर कहीं कुछ गलत, अपने को दुख पहुंचाने वाला, अपनी स्थिति को हीन बनाने वाला रिवाज़ लगे तो ज़रूरी नहीं है कि हम उसे चलाती ही जाएं। बेटी को बोझ नहीं, सहारा मानें। बहू को प्रतिद्वंद्वी नहीं, सहयोगी मानें।

हम में से कम ही यह बात साफ़ तौर पर देख पाते हैं कि पुरुषों में अपने आपसी हितों की रक्षा के लिए एक गुटबंदी है। काम के क्षेत्र में किसी स्त्री को आगे बढ़ता तो वे सह ही नहीं पाते हैं। यह जानते हुए भी कि उनके पुरुष सहयोगी ने स्त्री सहयोगी से छेड़छाड़ की होगी कभी स्त्री सहयोगी का पक्ष नहीं लेंगे।

जब तक औरत औरत को सहारा नहीं देगी उसकी स्थिति में सुधार नहीं होगा। हम औरतें अपने व्यवहार से पुरुषों के ही हाथ और मज़बूत करती हैं। इस पर सोचने व अमल करने की ज़रूरत है। □

इनसे सबक लें

प्रेमवती के पति की मौत एक दुर्घटना में हो गई। वह दुख में डूबी थी। ससुराल वालों ने उससे कुछ कागजों पर दस्तखत करवा लिए। उसको मिलने वाला रुपया-पैसा उन लोगों ने हथिया लिया। थोड़े दिनों बाद ही प्रेमवती व उसकी 5 साल की बेटी को बहुत कष्ट दिए जाने लगे। एक दिन प्रेमवती के हाथ उसके पति के बीमे का कागज लग गया।

प्रेमवती अपनी बेटी तथा वह कागज लेकर दूसरे शहर अपनी सहेली के पास पहुंची। सहेली ने उसे कुछ दिन पास रखा। फिर किराए के कमरे का इंतजाम किया। बीमे की रकम मिलने तक खर्चा चलाने व सिलाई की मशीन खरीदने के लिए रुपया उधार दिया। तीन महीने में प्रेमवती ने सिलाई सीख ली। सहेली की मदद से काम भी मिलने लगा। बाद में सहेली की मदद से उसे एक सरकारी नौकरी भी मिल गई। मामूली पद की ही सही, पर एक स्थाई नौकरी थी। अब वह बेटी को अच्छे स्कूल में पढ़ा रही है व सम्मान की ज़िंदगी बिता रही है। एक औरत की मदद से ही यह संभव हो सका।

× × ×

मेरे एक ममेरे भाई हैं। उनके दो बेटे थे। बड़े बेटे ने प्रेम-विवाह किया। बदकिस्मती से एक साल के भीतर ही बेटे की दुर्घटना में मृत्यु हो गई। भाई-भाभी के दुख की कल्पना की जा सकती है मगर उन्होंने एक बार भी बहू को कोसा नहीं। भाभी ने बहू की मां से कहा, 'अब यह हमारी बहू नहीं बेटी है। इसकी दुबारा शादी हम करेंगे।' साल भर के भीतर अपनी बहू की मर्ज़ी से उन्होंने उसकी शादी अपने दूसरे बेटे, जो बड़े बेटे से केवल एक साल छोटा था और देखने में हूबहू बड़े बेटे की तरह था कर दी। एक जवान लड़की का जीवन संवर गया। इन सब फैसलों में भाभी की प्रमुख भूमिका रही।

× × ×

सुलेखा के घर सत्तो काम करती थी। उसके दो छोटे बच्चे भी थे। एक लड़की 10 साल की तथा बेटा 7 साल का। एक दिन वह सुलेखा के पास साफ़ कपड़े पहन, हाथ में कापी पेंसिल लेकर आई और बोली, "बीबी जी, इस साल मैंने हाई स्कूल की परीक्षा देने का तय किया है।"

सुलेखा को ताज्जुब में पड़ा देख कर बोली—"क्यों, क्या मैं अब पढ़ नहीं सकती।"

सुलेखा—"नहीं, यह बात नहीं है। घर-गृहस्थी व कामकाज के साथ यह सब कर पाओगी?"

सत्तो—"दीदी, इस साल एक अच्छा अवसर मिल रहा है। महिला वर्ष के उपलक्ष में सिलाई कढ़ाई आदि का एक नया विषय जोड़ा गया है। गृह-विज्ञान, हिंदी और नागरिक शास्त्र लेकर मैं परीक्षा दे सकूंगी। विषय भी इस बार सिर्फ चार ही लेने होंगे।"

सुलेखा ने न केवल उसकी परीक्षा की फीस दी, परीक्षा की तैयारी करवाई। काम से समय-समय पर छुट्टी देकर पूरी मदद की। उन दोनों की खुशी का ठिकाना नहीं था जब सत्तो दूसरी श्रेणी में पास हो गई। पड़ोसियों ने दोनों को सम्मान की नज़र से देखा। अब सत्तो एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ा रही है। □

स्त्री का मन एक हीन-भावना से भर जाता है। स्त्री स्वयं अपने गुणों को दोष, अपनी ताकत को कमज़ोरी के रूप में देखने लगती है।

चक्रव्यूह से कैसे निकलें?

यह लिंग-भेदभाव की एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जो बच्चे के पैदा होने के समय से शुरू हो जाती है। बेटी के स्वाभाविक गुणों का विकास होने देने के बजाए हम उन्हें दबाना चाहते हैं। इसलिए सबसे पहले हमें अपनी सोच बदलनी होगी।

बेटी को बेटे के बराबर ही स्वस्थ विकास के अवसर दें। उसको भी उतना ही समर्थ बनाएं तभी हमारे मनों से उसके बोझ होने की भावना निकलेगी। समर्थ बेटी समर्थ बेटे से ज्यादा मां-बाप का सहारा बन सकती है। आदर्श पत्नी और आदर्श मां से परे भी वह कुछ है। क्या उसकी पहचान हम सिर्फ इन रिश्तों के सहारे ही चाहते हैं?

बहू के घर में आते ही सास-ससुर, ननद-देवर, जेठ-जिठानी सब उस पर अपना अधिकार समझने लगते हैं। एक औसत हिंदुस्तानी परिवार में बहू से अपेक्षाओं की सीमा नहीं रहती। यही नहीं कि उससे सिर्फ पूरे परिवार की देखभाल की आशा की जाती है बल्कि उसके आराम, उसकी देखभाल के प्रति कोई भी अपनी कुछ ज़िम्मेदारी नहीं समझता। उसके हिस्से में ताने, शिकवे शिकायतें ही आती हैं। क्या इस सोच को बदला नहीं जा सकता ?

क्या ही अच्छा हो यदि बहू बीमार पड़े या थक जाए तो उसको स्नेह भरी देखभाल मिले।

ब्याह के बाद बहू के रूप में घर का एक सदस्य बढ़ जाता है। अगर गहराई से सोचें तो पाएंगे कि घर में उसका बहुत योगदान रहता है। अगर घर का कुछ धंधा या व्यवसाय है तो वह श्रम वहां भी लगाती है। घर का खर्च पूरा न पड़े तो बाहर जाकर भी काम करती है। फिर क्यों लड़के के घरवाले संग में दहेज़ की कामना करते हैं? क्यों उसे हीन भावना से भर देने वाली इस प्रथा को लड़के व लड़की दोनों के माता-पिता चलाए जा रहे हैं? लड़की को जायदाद में हिस्सा नहीं देंगे, लेकिन उसके ब्याह में हैसियत से ज्यादा खर्च करने को तैयार रहते हैं?

अपना हित समझें

औरतों को सोच-समझकर, अपने व्यापक हितों को देखकर ही परंपराएं व रीति रिवाज़ चलाने चाहिए। अगर कहीं कुछ गलत, अपने को दुख पहुंचाने वाला, अपनी स्थिति को हीन बनाने वाला रिवाज़ लगे तो ज़रूरी नहीं है कि हम उसे चलाती ही जाएं। बेटी को बोझ नहीं, सहारा मानें। बहू को प्रतिद्वंद्वी नहीं, सहयोगी मानें।

हम में से कम ही यह बात साफ़ तौर पर देख पाते हैं कि पुरुषों में अपने आपसी हितों की रक्षा के लिए एक गुटबंदी है। काम के क्षेत्र में किसी स्त्री को आगे बढ़ता तो वे सह ही नहीं पाते हैं। यह जानते हुए भी कि उनके पुरुष सहयोगी ने स्त्री सहयोगी से छेड़छाड़ की होगी कभी स्त्री सहयोगी का पक्ष नहीं लेंगे।

जब तक औरत औरत को सहारा नहीं देगी उसकी स्थिति में सुधार नहीं होगा। हम औरतें अपने व्यवहार से पुरुषों के ही हाथ और मज़बूत करती हैं। इस पर सोचने व अमल करने की ज़रूरत है। □

इनसे सबक लें

प्रेमवती के पति की मौत एक दुर्घटना में हो गई। वह दुख में डूबी थी। ससुराल वालों ने उससे कुछ कागजों पर दस्तखत करवा लिए। उसको मिलने वाला रुपया-पैसा उन लोगों ने हथिया लिया। थोड़े दिनों बाद ही प्रेमवती व उसकी 5 साल की बेटी को बहुत कष्ट दिए जाने लगे। एक दिन प्रेमवती के हाथ उसके पति के बीमे का कागज लग गया।

प्रेमवती अपनी बेटी तथा वह कागज लेकर दूसरे शहर अपनी सहेली के पास पहुंची। सहेली ने उसे कुछ दिन पास रखा। फिर किराए के कमरे का इंतजाम किया। बीमे की रकम मिलने तक खर्चा चलाने व सिलाई की मशीन खरीदने के लिए रुपया उधार दिया। तीन महीने में प्रेमवती ने सिलाई सीख ली। सहेली की मदद से काम भी मिलने लगा। बाद में सहेली की मदद से उसे एक सरकारी नौकरी भी मिल गई। मामूली पद की ही सही, पर एक स्थाई नौकरी थी। अब वह बेटी को अच्छे स्कूल में पढ़ा रही है व सम्मान की ज़िंदगी बिता रही है। एक औरत की मदद से ही यह संभव हो सका।

× × ×

मेरे एक ममेरे भाई हैं। उनके दो बेटे थे। बड़े बेटे ने प्रेम-विवाह किया। बदकिस्मती से एक साल के भीतर ही बेटे की दुर्घटना में मृत्यु हो गई। भाई-भाभी के दुख की कल्पना की जा सकती है मगर उन्होंने एक बार भी बहू को कोसा नहीं। भाभी ने बहू की मां से कहा, 'अब यह हमारी बहू नहीं बेटी है। इसकी दुबारा शादी हम करेंगे।' साल भर के भीतर अपनी बहू की मर्ज़ी से उन्होंने उसकी शादी अपने दूसरे बेटे, जो बड़े बेटे से केवल एक साल छोटा था और देखने में हूबहू बड़े बेटे की तरह था कर दी। एक जवान लड़की का जीवन संवर गया। इन सब फैसलों में भाभी की प्रमुख भूमिका रही।

× × ×

सुलेखा के घर सत्तो काम करती थी। उसके दो छोटे बच्चे भी थे। एक लड़की 10 साल की तथा बेटा 7 साल का। एक दिन वह सुलेखा के पास साफ़ कपड़े पहन, हाथ में कापी पेंसिल लेकर आई और बोली, "बीबी जी, इस साल मैंने हाई स्कूल की परीक्षा देने का तय किया है।"

सुलेखा को ताज्जुब में पड़ा देख कर बोली—"क्यों, क्या मैं अब पढ़ नहीं सकती।"

सुलेखा—"नहीं, यह बात नहीं है। घर-गृहस्थी व कामकाज के साथ यह सब कर पाओगी?"

सत्तो—"दीदी, इस साल एक अच्छा अवसर मिल रहा है। महिला वर्ष के उपलक्ष में सिलाई कढ़ाई आदि का एक नया विषय जोड़ा गया है। गृह-विज्ञान, हिंदी और नागरिक शास्त्र लेकर मैं परीक्षा दे सकूंगी। विषय भी इस बार सिर्फ चार ही लेने होंगे।"

सुलेखा ने न केवल उसकी परीक्षा की फीस दी, परीक्षा की तैयारी करवाई। काम से समय-समय पर छुट्टी देकर पूरी मदद की। उन दोनों की खुशी का ठिकाना नहीं था जब सत्तो दूसरी श्रेणी में पास हो गई। पड़ोसियों ने दोनों को सम्मान की नज़र से देखा। अब सत्तो एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ा रही है। □

सोनपुर की सबलाएं

सोनपुर की औरतें चेत गई थीं। जान गई थीं कि उन्हें अपनी मदद खुद करनी होगी। हाथ पर हाथ धरे कुछ नहीं होगा। लाला ने पूरे छः महीने से राशन नहीं दिया। कहता है, 'सरकार माल नहीं देती है।' कभी गेंहू-चावल देता भी है तो उसमें कंकड़-पत्थर ज़्यादा होते हैं। पैसे की पर्ची भी नहीं देता। तोलता भी कम है। और मिट्टी का तेल ऐसा कि लकड़ी पर डालो तो धुआं ही धुआं। पानी मिलाता है उसमें भी।

पति नहीं तो राशन नहीं

इस बार हद हो गई। तुलसा जब राशन लेने गई तो उसे राशन नहीं मिला। कार्ड उसके पति के नाम पर है। लाला ने कहा, 'राशन लेने पति को भेजो।' तुलसा का पति उसे छोड़कर शहर चला गया है। तुलसा ने कहा, 'पति नहीं है।' लाला बोला—'तो राशन भी नहीं है।' इसी तरह सोना को लाला ने राशनकार्ड बनाकर नहीं दिया। कहा—'औरत के नाम पर कार्ड नहीं बनेगा।'

चेत गई औरतें

औरतों ने तय किया कि वे अपना हक़ लेकर रहेंगी। उन्होंने कलक्टर के दफ्तर में शिकायत की, अर्ज़ी दी। पर दो महीने गुजर गए। कोई सुनवाई नहीं हुई। चुनाव नज़दीक थे। नेताजी गांव का दौरा करने आए। औरतों ने कनस्तर पीट-पीट कर उनका स्वागत किया। जीप को घेर लिया। ज़ोर-ज़ोर से नारे लगाए—

राशन दो—राशन दो
वरना कुर्सी छोड़ दो

नेताजी से कहा—'सिर्फ़ वोट मांगने आते हो। इस दफा गांव से कोई वोट नहीं मिलेगा। पहले हमारी मांगें पूरी करो।' औरतों ने मांगें रखीं—

— राशन की दुकान का कब्ज़ा महिला मंडल के हाथ में दिया जाए।
— राशन कार्ड औरतों के नाम पर होंगे।
— राशन औरतें खुद बांटेंगी।

हम किसी से कम नहीं

नेताजी औरतों की हिम्मत देखकर दंग रह गए। उन्होंने मदद की। एक हफ्ते के अंदर राशन की दुकान का जिम्मा महिला मंडल को सौंप दिया गया। अब गांव के लोग खुश हैं। उन्हें ठीक समय पर राशन मिलता है। दुकान महिला मंडल की दो चुनी हुई सदस्याएं चलाती हैं। दुकान के बाहर एक बोर्ड लगाया गया है। इस पर सरकारी कोटे से मिलने वाले अनाज और तेल का ब्यौरा होता है। साथ ही प्रति किलो की कीमत भी।

सोनपुर की सबलाएं मिसाल हैं हिम्मत की। अपने हक़ के प्रति जागरूकता की। राशन की समस्या केवल उनकी नहीं हैं। यह तो हमारी, आपकी , सबकी है। सोनपुर से सबक लेकर हम भी अपनी मदद आप करें।
साथ मिलकर कहें,

बेईमानी को दूर करेंगे,
अपना हक़ हम लेकर रहेंगे।

अख्तर के अब्बा कौन?

अनीता रामफल

अख्तर गणित में तेज़ है और रेडियो भी ठीक कर लेता है। उसके दोस्त उस पर नाज़ करते हैं और कई चीज़ें देखने या सीखने के लिए उसके पीछे पड़े रहते हैं। उन्होंने नई टीचर को बताया है कि अख्तर यह सब करतब घर पर ही सीख लेता है, क्योंकि वह एक इंजीनियर का बेटा है। एक दिन अचानक नई टीचर की मुलाकात अख्तर के अब्बा से कचहरी में हो गई और उन्हें पता चला कि वे एक बड़े वकील हैं। टीचर कुछ चक्कर में पड़ गई। अख्तर के दोस्त उसे इंजीनियर का बेटा कह रहे थे, पर उसके पिता तो वकील हैं! यह कैसे?

क्यों, तुम भी चक्कर में पड़ गए? भई बात ही कुछ ऐसी है। इंजीनियर अख्तर के पिता नहीं, मां है। अब यह सोचने की बात है कि अख्तर के अब्बा से मिलकर टीचर चक्कर में क्यों पड़ गई? सच्चाई यह है कि केवल टीचर ही नहीं, और भी कई लोग क्षण भर के लिए चक्कर में पड़ जाएंगे। तुम चाहो तो आजमा कर देख लो। पर ऐसा क्यों होता है? यह क्यों नहीं होता कि लोगों के ध्यान में झट से यह आए कि अख्तर की मां इंजीनियर है। शुरू में जब अख्तर का परिचय मिलता है तो हम सभी क्यों अपने-अपने दिमाग में यह छवि बना लेते हैं कि इंजीनियर तो उसके पिता होंगे। ऐसा क्यों।

मां की उपेक्षा

क्या ऐसा इसलिए है कि अक्सर बच्चे का (या किसी बड़े का भी) परिचय उसके पिता के नाम से ही दिया जाता है? स्कूल में भर्ती के समय भी तुम्हारे पिता का नाम ही फार्म में भरा गया था। तुमने कभी सोचा कि तुम्हारी मां का नाम भी क्यों नहीं मांगा गया? आखिर तुम्हारे जन्म में, पालन-पोषण में तुम्हारी मां की भागीदारी तुम्हारे पिता से कुछ कम तो नहीं? फिर क्यों हमारी पहचान केवल पिता के नाम से ही की जाती है? मैंने तो एक आदत ही बना ली है, जब भी पिता का नाम लिखवाया जाता है मैं वहां साथ में मां का नाम भी लिख देती हूं। आखिर बेटी तो दोनों की हूं, फिर मां को क्यों भुला दूं।

यह हो सकता है कि इंजीनियर ज़्यादातर पुरुष ही होते हैं, इसलिए हमारे दिमाग में इंजीनियर की छवि पुरुष के रूप में ही बनती है। जैसे जब कोई नर्स कहता है तो हमेशा महिला की छवि सामने आती है। वैसे अन्य देशों में पुरुष भी नर्स होते हैं, पर हमारे यहां आमतौर पर महिलाएं ही नर्स होती हैं। ख़ैर यह तो हम जानते हैं कि इंजीनियरों में महिलाओं की तादाद कम है। पर ऐसा क्यों है? क्या यह इसलिए कि महिलाओं में इंजीनियर बनने की 'क्षमता' नहीं है? पर यह 'क्षमता' होती क्या है और कहां से आती है? क्योंकि अवसर और अनुकूल माहौल मिलने पर महिलाएं इंजीनियर भी बनती हैं, वैज्ञानिक, वकील या डॉक्टर भी! आज महिलाएं कई ऐसे व्यवसाय चुन रही हैं या काम कर रही हैं, जो सदियों से पुरुषों

तक ही सीमित थे। तुम बता सकते हो ऐसे कुछ कामों के उदाहरण? हां, यह ज़रूर है कि ऐसे कामों में महिलाओं की संख्या अभी कम है। पर क्यों?

सही अवसरों की कमी

सही अवसर दरअसल लड़की को शुरू से ही नहीं मिलते। उसकी तो पैदाइश पर ही लोग अफसोस मनाते हैं, जबकि लड़का जन्मे तो दूर-दूर तक बधाइयां गूंजती हैं। जन्म से जो भेदभाव शुरू होता है, जीवन भर लड़की का पीछा नहीं छोड़ता। अनेक घरों में खाने की पौष्टिक और बढ़िया चीज़ों, जैसे दूध या फल पर लड़कों का अधिकार पहले होता है। लड़की और उसकी मां के लिए तो बचाखुचा खाना ही होता है। लड़की को स्कूल भेजना भी उतना ज़रूरी नहीं समझा जाता, जितना लड़के का। और यदि लड़की स्कूल गई भी तो कुछ कक्षाओं के बाद उसकी पढ़ाई समाप्त कर दी जाती है। कारण यही कि या तो ब्याह दी जाती है या फिर घर के काम में इतनी फंसा दी जाती है कि पढ़ाई उसे निरर्थक लगने लगती है। उसे लगने लगता है उसका प्राथमिक काम तो घर संभालना है।

घर के काम में बेशक कोई बुराई तो नहीं, वह तो करना ही है। पर यदि घर के ये काम लड़के और लड़की दोनों मिलकर करें, तो फिर लड़की को वह मौके भी मिल सकें जो केवल लड़कों को मिल पाते हैं, जैसे घर के बाहर खेलकूद करना, स्कूल जाना, अन्य लोगों से मिलना, अपनी हिम्मत बढ़ाना आदि। अभी होता यही है कि एक को तो शुरू से ही तमाम बंदिशों में बांध देते हैं। उस पर ज़्यादा रोक-टोक लगाते हैं, उस पर घर के सभी काम थोप देते हैं, दुनिया भर के डर भर देते हैं। अब ऐसे में ज़ाहिर है कि उसकी क्षमता सीमित कामों में ही उभर पाएगी। तुममें से भी कितनी लड़कियां ऐसी होंगी जिन्हें छुटपन से ही घर के कामों में मां का हाथ बंटाना पड़ा है, घर के और कामों की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ी है। जबकि तुम्हारे भाइयों को अधिक आज़ादी मिली है, खेलकूद और मस्ती करने के लिए अधिक समय और पढ़ाई के लिए अधिक व अनुकूल अवसर भी। क्या तुम्हें कभी लगा है कि तुम भी भैया की जगह होतीं तो क्या मज़ा मारतीं।

लड़कियों की क्षमता

यदि बचपन से ही लड़की और लड़कों को एक-सा पालें, एक-से अवसर दें, दोनों को सभी कामों से, समस्याओं से जूझना सिखाएं तो कोई कारण नहीं कि लड़कियां भी सभी तरह की भूमिका निभाने में सक्षम होंगी।

पर आज अधिकतर घरों में स्थिति ऐसी नहीं है। जहां बहादुर बनने की बात हो, या निडर होने की तो लड़के को ही यह सीख दी जाती है। उसे कहा जाता है लड़कियों की तरह मत रो, तू तो बड़ा बहादुर है। लड़कियों को जोखिम वाले कामों से, बिजली से, कीड़ों से, अंधेरे से और तमाम ऐसी चीज़ों से जिनमें एक डर होता है दूर ही रखा जाता है। यदि शुरू से ही उनको भी इन चीजों से लड़कों की ही तरह जूझने, उलझने दिया जाए तो पिछड़ने का कोई कारण नहीं।

हमारे देश में स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या बहुत कम है। पर जब भी उन्हें अवसर और अनुकूल माहौल मिला है वे लड़कों से बीस ही रही हैं। अचरज की बात है कि अन्य देशों

की तुलना में हमारे देश में अधिक लड़कियां विज्ञान और इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए जाती हैं। हमारे देश में उच्च शिक्षा के स्तर पर भी इंजीनियरिंग या तकनीकी शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों में लड़कियों की संख्या 45% से अधिक है। जबकि रूस या इंग्लैंड में कम ही है। फिर ऐसा क्यों है कि वैज्ञानिक, इंजीनियर या अन्य शोध क्षेत्रों में लड़कियां, लड़कों के मुकाबले कम ही आती हैं। शायद ऐसा इसलिए होता है कि कालेज में बी.एस-सी., एम.एस-सी. कर लेने के बाद उन्हें आगे पढ़ने और शोध आदि का मौका ही नहीं मिल पाता। वजह वही कि पहले उनका ब्याह होता है और फिर परिवार, बच्चों की जिम्मेदारियां उनका रास्ता रोकती हैं। शायद इसीलिए हमारे दिमाग में एक वैज्ञानिक या इंजीनियर के रूप में महिला कम ही आती है।

इन सभी विज्ञान और इंजीनियरिंग पढ़ने वाली महिलाओं में से अख़्तर की मां भी एक है। पर उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने का न केवल अवसर मिला बल्कि माहौल भी, तभी वे अपनी ट्रेनिंग पूरी करके नौकरी कर सकीं। ब्याह भी हुआ, अख़्तर और उसकी नन्ही बहन सबीहा भी पैदा हुई, पर उन्होंने अपनी नौकरी नहीं छोड़ी। अख़्तर के अब्बा वकील हैं। बहुत व्यस्त रहते हैं। पर घर का काम भी करते हैं। खाना पकाना, कपड़े या बर्तन धोना, बच्चों को तैयार करना, हर काम में उनकी भागीदारी रहती है। अख़्तर भी घर के सभी काम सीख रहा है ताकि आगे चलकर वह भी अब्बा जैसी भूमिका निभाएगा।

साभार—चकमक

मिल के चलें, मुश्किलें होंगी आसान

"बड़ा इंच रैंच देना, वाइस कसो, ज़रा ज़ोर से।" यह आवाज़ें हैं हैंडपंप मरम्मत करने वाली महिलाओं की। बुंदेलखंड के मानिकपुर ब्लॉक में पानी की बहुत कमी है। देश के कई भागों के लिए यही बात है। पानी का स्रोत हैंडपंप हैं। लेकिन इस्तेमाल से वे खराब भी होते रहते हैं।

महिला सामाख्या स्कीम के तहत कई महिलाओं ने उनकी मरम्मत का काम सीखा। अब वे गांवों की और औरतों को भी मरम्मत के काम की ट्रेनिंग देती हैं। मानिकपुर ब्लॉक, जिला बांदा की खास बात यह है कि इस पूरे कार्यक्रम की ज़िम्मेदारी महिलाओं के कंधे पर है। कुल 500 हैंडपंपों में से 350 हैंडपंपों की मरम्मत, रख-रखाव महिलाएं करती हैं और इसके लिए इन्हें कोई मेहनताना नहीं मिलता है।

कार्यक्रम में अधिकतर महिलाएं कोल व हरिजन हैं। इस प्रोग्राम के कारण कई गांवों में बड़े मज़बूत महिला संघ (समूह) बन गए हैं। फलस्वरूप इनकी कई समस्याएं स्थानीय स्तर पर हल की जा रही हैं। ज़मींदारों, तेंदु-पत्ता के ठेकेदारों, गुंडों द्वारा महिलाओं को तंग किया जाना, यौनिक-हिंसा आदि के मामलों को संघ की सखी और सहयोगिनी उठाती हैं। इस सबसे गांवों की महिलाओं में जागरूकता के साथ-साथ एक नई ताक़त आई है।

संगठन से ताक़त मिलती है, इसके बारे में दो राय नहीं हो सकतीं। लेकिन संगठन बनाना एक कठिन काम है।

संगठन कैसे बनाएं?

विशेष मुद्दों पर अगर गांव में कोई खास घटना घटी हो या कोई ऐसी समस्या है जिसका ताल्लुक सभी से है तो कई बार लोग आपस में जुड़ते हैं। ऐसे मौके का उपयोग संगठन बनाने के लिए किया जा सकता है।

समस्याएं: राशन ठीक समय पर न मिलना। राशन की दुकान गांव में न होना। पानी, बिजली की उचित व्यवस्था न होना। ठेकेदार द्वारा सही मज़दूरी न देना। गांव में स्वास्थ्य सेवा न मिल पाना। दहेज के कारण बहू को तंग किया जाना। महिलाओं व लड़कियों के संग छेड़-छाड़, शीलभंग व बलात्कार।

एक सी सोच लेकर लोगों का आपस में जुड़ना बहुत महत्व रखता है। संगठन बनाने में किसी

एक या कुछ लोगों को पहल करनी पड़ती है। हमेशा यह ज़रूरी नहीं है कि बाहर से ही कोई सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता या संगठनकर्ता आए।

शुरू में डर, अपने पर भरोसा न होना, असुरक्षा की भावना, परिवार द्वारा विरोध आदि हो सकता है, लेकिन आपस में बातचीत, साथ मिलकर उठने-बैठने से काफ़ी चीज़ों पर काबू पाया जा सकता है।

विशेष कार्यक्रम

साक्षरता अभियान, उत्तर साक्षरता कार्यक्रम, प्रशिक्षण कार्यक्रम, रोज़गार के लिए कोई कार्यक्रम चलाकर भी संगठन बनाया जा सकता है। महिलाओं को घर से निकालना एक मुश्किल काम है। काम के बोझ से दबी इनके पास वक्त की बहुत कमी होती है। घर की ओर से बंधन व रोक-टोक भी होती है। लेकिन अगर वे एक बार निकल आती हैं तो उन्हें अच्छा लगता है। अगर बातें और मुद्दे उनसे जुड़े व उनके हित में हैं तो काफी संभावना है कि वे जुड़ेंगी।

संगठन में अकसर देखा गया है कि वर्ग, जाति और धर्म के भेद-भाव मिट से जाते हैं। एक दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नज़रिया बहुत ज़रूरी है। एक खुला वातावरण जहां खुलकर बात की जा सके बहुत ज़रूरी है। दबाए जाने, शोषण व अत्याचार को रोकने का यही एक तरीका है। समस्याएं इतनी ज्यादा व इतनी जटिल हैं कि अकेले हल निकालना संभव ही नहीं है। □

उत्पीड़ित महिलाओं को शीघ्र न्याय मिले

उषा श्रीवास्तव

औरतों के समान अधिकार, समान भागीदारी व उत्थान आदि ऐसे शब्द हैं जिनकी गूंज संचार माध्यमों से लेकर संसद तक अकसर सुनाई दे जाती है। यथार्थ के धरातल तक आते-आते वह न जाने कहां खो जाती है। देश की आधी आबादी का एक बड़ा हिस्सा शोषण व भेदभाव की सामाजिक व्यवस्था के अन्याय व उत्पीड़न का शिकार बना रहता है। उत्पीड़ित स्त्री के न्यायालय की शरण में जाने पर भी न्याय की लंबी प्रक्रिया व विरोधी पक्ष की गतिविधियों के कारण यातना और बढ़ जाती है।

लाखों की संपत्ति की उत्तराधिकारी सिर्फ इस डर से अपने अधिकार के लिए अदालत का दरवाजा नहीं खटखटाती कि न्याय तो शायद वर्षों बाद मिले, पर इन वर्षों में उसका जीवन ज़रूर दूभर हो जाएगा। हिम्मत करने पर भी वह अपने अधिकार इसलिए पाने में असमर्थ हैं क्योंकि न्याय व्यवस्था में बहुत सी कमियां हैं।

अधिकार देना काफ़ी नहीं

विधिशास्त्र की सर्वमान्य धारणा है कि कमज़ोर व पिछड़े वर्ग को समानता के स्तर पर लाने के लिए सिर्फ़ समान अधिकार दे देना काफ़ी नहीं है। अधिकारों के साथ उन अधिकारों को संरक्षण देना भी उतना ही जरूरी है। उपभोक्ता के अधिकारों के लिए उपभोक्ता संरक्षण परिषद द्वारा निशुल्क शीघ्र न्याय व्यवस्था की गई पर नारी समाज की

सुध नहीं ली गई।

स्त्री यदि अपने अधिकारों के लिए न्यायालय में जाती है तो उसे अपने निकटवर्ती परिचितों, रिश्तेदारों व आस-पड़ोस से सहानुभूति की जगह व्यंग और ताने सुनने को मिलते हैं। उसे अविलंब न्याय देना हमारी मानवता और संवेदनशीलता का तकाजा है। वरना उत्पीड़ित नारियों के लिए क़ानूनी अधिकार एक काल्पनिक आदर्श मात्र बने रहेंगे।

क़ानून की लंबी प्रक्रिया

स्त्रियों के कल्याण व विकास के लिए बहुत से क़ानून बनाए गए हैं। 1975 महिला-वर्ष, 1990 बालिका-वर्ष और अब 1991 से 2000 दशक बालिका दशक मनाया जा रहा है। भारत सरकार ने इस दशक के लिए कई योजनाएं बनाई हैं। इनमें महिलाओं से संबंधित मौजूदा क़ानून, कामगार महिला, बंधुआ मज़दूर, ठेका मज़दूर से संबद्ध क़ानून, हिंदू दत्तक अधिग्रहण, तलाक, संपत्ति में अधिकार, दहेज, बलात्कार व अपहरण के खिलाफ़ क़ानून वगैरह के प्रति महिलाओं में जागरूकता पैदा करने का भी कार्यक्रम है।

इस कार्य योजना में क़ानून के अमल होने की लंबी प्रक्रिया पर ध्यान नहीं दिया गया है। सिर्फ़ क़ानूनी अधिकार मिलना और उनके प्रति जागरूकता होना काफ़ी नहीं है। अधिकारों के क्रियान्वयन की निशुल्क व विलंबरहित न्यायिक व्यवस्था भी बहुत ज़रूरी है।

न्यायालयों में विलंब को ध्यान में रखते हुए लोक अदालत का काफ़ी व्यापक इस्तेमाल किया गया है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अधीन उपभोक्ता संरक्षण परिषद, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम 1985 के अधीन

कर्मचारी प्रकरणों के लिए राज्य व केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण आदि में शीघ्र न्याय की व्यवस्था है। इन न्यायालयों में फीस भी नाममात्र की है। इसी तरह अगर महिला अधिकार न्यायाधिकरण बने तो महिलाओं को शीघ्र व निशुल्क न्याय मिल सकेगा।

महिला अधिकार न्यायाधिकरण

हर राज्य में महिला अधिकार न्यायाधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए जो राज्य के प्रमुख स्थानों पर निश्चित समय के भीतर राज्य की प्रत्येक भाग की महिलाओं को शीघ्र न्याय दिलाने की सुविधा दे। इस न्यायाधिकरण का स्तर उच्च न्यायालय के समकक्ष हो जिससे कि इसके लागू करने में न्यायिक प्रक्रिया कोई बाधा न डाल सके।

विधिवदों का मत है "देर से न्याय मिलना न्याय न मिलने के बराबर है।" महिलाओं के संबंध में यह तथ्य पूरी तरह लागू होता है। राष्ट्रीय महिला आयोग से इस दिशा में समुचित प्रयासों की अपेक्षा है। □

हम सब नेता बन सकती हैं

वीणा शिवपुरी

यह एक दूर प्रदेश की कहानी ज़रूर है, लेकिन बाकी सब बातें वही हैं जो हमारे तुम्हारे गांव में हैं। ग़रीबी, अज्ञानता, महाजन और साहूकारों का राज। इस सबके बीच एक साधारण औरत ने कैसे अपने गांव की शक्ल बदल दी।

दूर उड़ीसा राज्य के छोटे से गांव सिरीगुडा में एक संस्था काम करती थी। उन्होंने गांववालों को सुझाव दिया कि अपना एक अनाज बैंक बनाओ। यानि अनाज का भंडार जिसमें हर सदस्य थोड़ा-थोड़ा अनाज डाले। ताकि वक्त ज़रूरत पर वहां से अनाज उधार ले सकें। इस तरह से महाजन के पास अपना गहना-गांठा और ज़मीन गिरवी नहीं रखनी पड़ेगी।

हिम्मतवर औरत

गांववालों को यह बात समझ में नहीं आई। महाजन ने भी उन्हें उल्टी पट्टी पढ़ा दी। सब लोगों ने इसका विरोध किया। बात ठंडी पड़ गई। यह फ़ैसला लेने वाले मर्द भले ही अज्ञानी हों पर एक औरत सुमनि समझदार थी। उसकी समझ में आ गया कि इस योजना में हम सबका ही भला है।

जब सब लोग कोई काम कर रहे हों तो उससे जुड़ना आसान है। अकेले किसी काम का बीड़ा उठाना बड़ी हिम्मत की बात है। हम सब डरते हैं कि लोग हंसेंगे। अगर काम सफ़ल नहीं हुआ तो मज़ाक बनेगा।

सुमनि ने इस सबकी परवाह नहीं की। एक बार उसने तय कर लिया कि अनाज बैंक बनाना

है तो बस कमर कस के जुट गई। घर-घर जाकर उसने अनाज मांगा। एक फ़सल बीतते तक उसने पैंतालीस किलो अनाज जमा कर लिया था। उस छोटे से भंडार से जब लोगों को मदद मिली तो उन्हें असलियत समझ में आने लगी। धीरे-धीरे सारा गांव उस योजना से जुड़ गया।

एक नया आदर्श

आज सिरीगुडा के अनाज बैंक में दो हज़ार किलो अनाज है। आज किसी गांववाले को अपना घर-द्वार गिरवी रखने की ज़रूरत नहीं। मोटे ब्याज पर महाजन से उधार लेने की ज़रूरत नहीं। सब मिलजुल कर अड़ी में काम आते हैं। उनका आर्थिक शोषण ख़त्म हो चुका है।

सिरीगुडा का सफल उदाहरण देख कर आसपास के गांवों में भी अनाज बैंक बन गए हैं। आज नब्बे गांवों में यह योजना चालू है। इस सफलता का सेहरा सुमनि के सिर बंधता है। किसी नई राह पर पहला कदम उठाने वाली, पहला सवाल पूछने वाली या पहला विरोध करने वाली ही नेता बनती है। सुमनि की तरह हममें और आपमें भी ऐसी नेता छिपी हैं। ज़रूरत उस झिझक को तोड़ने की है।

एक क़दम से शुरू हुई यात्रा

अनाज बैंक से गांव में जो चेतना आई वह आगे बढ़ती ही गई है। आज सिर्फ़ सुमनि ने ही नहीं, बाकी लोगों ने भी पढ़ना लिखना सीखा है। अपने शोषण के प्रति जागरूक हुए हैं। अपनी समस्याएं और मुद्दे लेकर सरकारी अफ़सरों के पास जाने से नहीं झिझकते।

सुमनि को देख कर वहां की और औरतों में भी चेतना आई है। उन सबने मिलकर सरकार से मांग की कि घर और ज़मीन का पट्टा मर्द औरत दोनों के नाम पर हो। पति घर-ज़मीन बेच कर बीबी बच्चों को बेसहारा छोड़ देते हैं।

सुमनि और उसकी सहेलियों ने मिलकर उड़ीसा में औरतों को पूरी मज़दूरी दिए जाने पर ज़ोर दिया। औरतों की सहकारी समितियां बनाने की बात की। यहां तक कि उड़ीसा के मुख्यमंत्री ने सुमनि के साथ दो और आदिवासी औरतों को अपना सलाहकार बनाया है। आखिर आदिवासियों और औरतों के मामलों पर उनसे अच्छी राय और कौन दे सकता है।

डर छोड़ो, झिझक तोड़ो

आखिर सुमनि में ऐसा क्या है जो हममें नहीं। जो कुछ सुमनि कर सकी वह हम क्यों नहीं कर सकतीं। वे भी हम सबकी तरह गांव की सीधी-सादी अनपढ़ औरत थी। बस, यही सोच लो कि पहला कदम लेने वाली औरतें आसमान से नहीं उतरतीं। वे हम लोगों के बीच से ही उठती हैं। बात तो बस ठान लेने की है। औरत एक बार कुछ ठान ले तो कोई उसे डिगा नहीं सकता। आज से ठान लो जो तुम ठीक समझती हो वही करोगी। जो कुछ ग़लत लगता है उस पर ज़रूर बोलोगी। □

नारी की गरिमा पहचानो
तुम अपने हक को अब जानो

गुणी की कहानी लक्ष्मीबाई की जुबानी

जुही जैन

अपनी नानी-दादी को हमने अक्सर कहते सुना है खांसी है तो अदरक की जड़ चूस लो। बाल-तोड़ में दर्दमार पत्ता गरम करके बांध लो। अकौए के फलों का चूर्ण हाजमा ठीक रखता है। नीम की निबौलियों का रस फोड़े-फुंसी का रामबाण इलाज है।

प्रकृति और हम

प्रकृति के साथ हमारा यह रिश्ता पुराने समय से चला आ रहा है। जड़ी-बूटियों से इलाज के अनगिनत किस्से हमारे शास्त्रों में दर्ज हैं। इसी संबंध को दर्शाती है एक प्रचलित बौद्ध लोक कथा। एक विहार में बौद्ध शिष्य चिकित्सा शास्त्र पढ़ रहे थे। परीक्षा का समय नज़दीक आया। गुरूजी ने कहा, 'जाओ और सात दिनों के अंदर ऐसी चीज ढूंढ कर लाओ जिसमें कोई औषधीय गुण न हो।' सभी शिष्य अलग-अलग दिशाओं में निकल पड़े। एक हफ्ते बाद सभी कुछ न कुछ लेकर लौटे। केवल एक शिष्य ब्रह्मदत्त खाली हाथ लौटा। पूछने पर बोला, 'गुरुवर, मुझे कोई भी ऐसी चीज नहीं मिली। प्रकृति तो गुणों की खान है।' यही शिष्य बाद में जाकर संसार का महान चिकित्सक बना।

ख्वाब से हकीकत तक

इसी लोक कथा को सच कर दिखाया राजस्थान के भिथोडी गांव के निवासियों ने। भिथोडी उदयपुर का बहुत गरीब और पिछड़ा इलाका है। यहां बसने वाले लोग आदिवासी हैं। जड़ी-बूटियों के इलाज में माहिर। कैसी भी तकलीफ हो, कानदर्द से लेकर हड्डी जोड़ने तक, इनके पास हर बीमारी का तोड़ है।

आप बीती

पहले पहल लोग हम पर शक करते थे। कहते थे हम टोना-टोटका करते हैं। काला जादू जानते हैं। पर अब वही कहते हैं, 'आओ बहन रोटी खा जाओ, तुम तो हमारे गांव की हो। हमें जल्दी मिल जाओगी। बाहर के डाक्टर का क्या भरोसा।' कहती हैं लक्ष्मीबाई।

लक्ष्मीबाई की उम्र पैंतालीस साल की है। वह बचपन से 'गुणी' का काम करती है। 'हमारे गांव में जड़ी-बूटी से इलाज करने वालों को गुणी कहते हैं। पहले यह काम सिर्फ मर्दों का था। हमारे गांव की औरतें मर्दों से इलाज नहीं कराती हैं। इसलिए उनका इलाज हो ही नहीं पाता था। गांव में मेरे जैसी काफी औरतें देसी इलाज जानती थीं। पर शुरुआत कौन करे? मैंने आठ साल की उम्र में यह काम सीखा। मेरी मां के कान में बहुत दर्द था। पिता ने कहा कि नहर के पास वाले झाड़ की पत्तियां तोड़ लाऊं। मैं पत्ती तो लाई पर

दूसरी। उससे इलाज तो हो गया मां का। साथ-साथ मोतियाबिंद में भी फायदा हुआ। बस तभी से यह काम करती हूं।

सरकार ने दवाखाना खोला

ससुराल आने पर यह काम छूट गया। फिर सरकारी दवाखाना भी खुल गया मेरे गांव में। शहर से डाक्टर आया। उसने अंग्रेज़ी इलाज किया। इलाज महंगा जरूर था, पर मरीज जल्दी ठीक होता था। इसलिए सब अपना देसी इलाज छोड़कर उसके पास जाने लगे। डाक्टर ने इस बात का फायदा उठाया। वह इलाज के पैसे मांगने लगा। पहले वह कार्ड बनाकर मुफ्त दवा देता था। उस पर बोतल में भरकर दवा देने वाले कम्पाउंडर की घूस अलग। हम क्या खाते और क्या इलाज करवाते।

एक नया जागरण

1989 में गांव में मलेरिया फैला। पंचायत ने सरकारी मदद मांगी। पर सरकार का रवैया लापरवाही का था। तीन दिन के अंदर आठ बच्चे मर गए। बस, हमने तय किया हम ऐसे नहीं मरेंगे। देसी दवा से इलाज करेंगे। कुछ तो फायदा होगा। हम सात लोग मिल गए। तीन मर्द, चार औरतें। और दिन-रात लोगों की सेवा की। मेहनत रंग लाई। चार दिन में चौदह सौ लोगों की हालत सुधरी।

इसके बाद हमने पीछे मुड़कर नहीं देखा। हमारा अपने ऊपर विश्वास बढ़ा। और 'जागरण' का जन्म हुआ। 'जागरण' की मदद से आस-पास के इलाकों में दवाखाने खोले। जहां दवाखाने नहीं थे वहां पैदल जाकर इलाज किया। 'गुणियों' ने सारदा, सलूंबेर, गिरवा ब्लाक में भी काम शुरू किया। आज की तारीख में 'जागरण' में सोलह 'गुणी' हैं। यह अपना गुणी का खजाना लेकर आस-पास के इलाकों में घूमते हैं। इलाज करने का हम कोई पैसा नहीं लेते। कोई जिद करे तो पैसे का दाना लेकर कबूतरों को खिला देते हैं। लोगों की दुआएं हमारी फीस है। हमारे खर्चे के लिए 'जागरण' हमें ढाई-सौ रुपए माहवार देता है।'

यह अंतिम पड़ाव नहीं है

लक्ष्मीबाई कहती हैं, 'पर समस्या पूरी तरह हल नहीं हुई है। आजकल जड़ी-बूटियां मिलने में काफी कठिनाई होती है। हमारे पास इलाज करने वाले लोगों की भी कमी है। इसलिए इस बार हमने पहली बार गांव में जड़ी-बूटी इलाज सिखाने का कैम्प लगाया। अब काफी औरतें 'गुणी' का काम सीख रही हैं।'

'जागरण' की मदद से लक्ष्मीबाई जैसी औरतें अपनी इस धरोहर को बचाने में सफल हो गई हैं। अब औरतें बिना इलाज के नहीं मरतीं। और वे महंगे अंग्रेज़ी इलाज की मोहताज भी नहीं हैं।

औरतों के जागरण का यह सपना तो सच हो गया है। यह कोई करिश्मा नहीं है। इसे देखा भी आप-हमने, इसे साकार भी किया हमने। पर सफर अभी खत्म नहीं हुआ है। अभी तो हमें बहुत कुछ पाना है। कुछ और सपने देखने हैं। कुछ और सपनों को पूरा करना है। तभी तो जी पाएंगे हम। तो आइए मिलकर कहें—

"हममें हिम्मत हममें मेहनत
हममें पूरा दम है
किसने कहा कि औरत जाति
मर्दों से कुछ कम है"

□

साहसता · समानता · प्रखरता · निर्भयता · शक्ति

मत कहो इसे तुम अबला अब
शिक्षित नारी है सबला अब

★

नारी का मान बढ़ाना है
तो साक्षर हो दिखलाना है